महात्मा गांधी की
150 वीं जयंती महोत्सव

महानदी

''नराकास'' भिलाई–दुर्ग की गृह पत्रिका

2020

गाँधी एवं हिंदी

स्वर्ण जयंती विशेषांक

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति
भिलाई – दुर्ग (छ.ग.)

महात्मा गांधी की
150 वीं जयंती महोत्सव

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की 150 वीं जयंती वर्ष

**राष्ट्रीय व्यवहार में
हिंदी को
प्रयोग में लाना,
राष्ट्र की एकता
और उन्नति
दोनों के लिए
आवश्यक है ।**

- महात्मा गाँधी

**नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति,
भिलाई - दुर्ग**

महानदी

राजभाषा गृह पत्रिका–वर्ष 2020
नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, भिलाई – दुर्ग (छ.ग.)

गांधी एवं हिंदी स्वर्ण जयंती विशेषांक, अनुक्रमणिका

क्र.	आलेख	आलेखकर्ता सर्वश्री/सुश्री	पृष्ठ.क्रं.
01.	मैं हिंदी की बहुत बड़ी प्रशंसक हूँ	इला गाँधी	06
02.	हिंदी के लिए गाँधी जी के प्रयत्न	काका कालेलकर	08
03.	शिक्षा का माध्यम और गाँधी जी	रामधारी सिंह दिनकर	11
04.	राष्ट्रीयता और अस्मिता कहाँ खो गई ?	शंकर दयाल सिंह	16
05.	गाँधी और हिंदी–भारत और राष्ट्रसंघ की भाषा	डॉ. रत्नाकर पाण्डेय	19
06.	राष्ट्रभाषा और गाँधी	उदय प्रताप सिंह	22
07.	हिंदी उनके लिए राष्ट्रीयता का संगीत थी	सत्यव्रत चतुर्वेदी	23
08.	हिंदी पत्रकारिता और गाँधी	वेद प्रताप वैदिक	25
09.	गाँधी की हिंदी आ चुकी है...	डॉ. इन्द्रनाथ चौधरी	27
10.	महात्मा गाँधी और हिंदी	ललित सुरजन	29
11.	संविधान सभा में गाँधी की हिंदी	कनक तिवारी	31
12.	गाँधी ने ही राष्ट्रभाषाा के रूप में हिंदी को पहचाना	डॉ. परमानंद पांचाल	33
13.	राष्ट्रीय आंदोलन और गाँधी : हिंदी की भूमिका	डॉ. महेन्द्र मधुकर	35
14.	गाँधी और हिंदी	डॉ. सी. जयशंकर बाबू	41
15.	हिंदी साहित्य पर गाँधीजी का प्रभाव	विजयेन्द्र स्नातक	44
16.	राष्ट्रपिता और राष्ट्रभाषा	लक्ष्मीनारायण सुधांशु	46
17.	हिंदी प्रचार की नाकाफियां	कनक तिवारी	48
18.	हिंदी का हठयोगी	पारमिता मोहन्ती	51
19.	गाँधी एवं हिंदी–एक चिंतन	जय प्रकाश पाण्डेय	53
20.	हिंदी के प्रबल समर्थक–गाँधी	विजय कुमार राखोण्डे	54
21.	गाँधी जी की संपर्क भाषा थी हिंदी	गिरिजा गणेशन	55
22.	उच्च शिक्षा संबंधी गाँधी चिंतन की प्रासंगिकता	डॉ. अबरीश त्रिपाठी	56
23.	बापूजी के साथ हिंदी – चर्चा	मदालसा नारायण	57
24.	देश के प्रतिष्ठित समाचार पत्र–पत्रिकाओं में छपे गाँधीजी के आलेख एवं प्त्र	समाचार पत्र–पत्रिकाओं से साभार	59

टिप्पणी :
पत्रिका की रचनाओं में व्यक्त विचारों से संपादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। मौलिकता एवं अन्य विवादों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

संपर्क सूत्र :
राजभाषा विभाग–313–ए, तीसरा तल, इस्पात भवन,
भिलाई इस्पात संयंत्र, भिलाई नगर (छ.ग.) – 490 001

~~~~~~~: संरक्षक :~~~~~~~
श्री अनिर्बान दासगुप्ता
मुख्य कार्यपालक अधिकारी
भिलाई इस्पात संयंत्र एवं
अध्यक्ष नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति
भिलाई–दुर्ग (छ.ग.)

~~~~~~~: मार्गदर्शक :~~~~~~~
श्री सुरेश कुमार दुबे
कार्यपालक निदेशक (कार्मिक व प्रशासन)
भिलाई इस्पात संयंत्र

~~~~~~~: संपादक :~~~~~~~
डॉ. बी.एम. तिवारी
उप महाप्रबंधक (राजभाषा) एवं सचिव,
नगर राजभाषा कार्या. समिति, भिलाई – दुर्ग (छ.ग.)

~~~~~~~: संपादक मंडल :~~~~~~~
श्री एस.के. राजा
महाप्रबंधक
सेल सेट, भिलाई

श्री पंचराम साहू
वरीय सांख्यिकीय अधिकारी
एन.एस.ओ. दुर्ग

श्री गोपेन्द्र सिंह ठाकुर
सहायक
केनरा बैंक, सेक्टर–6, भिलाई

श्रीमती भावना चाँदवानी
उप प्रबंधक
युनाईटेड इंडिया इंश्योरेंस कं.लि. भिलाई

मुख्यपृष्ठ अभिकल्पन
वीरु स्वर्णकार
डिजाईनर स्क्वेयर
सेक्टर–8, भिलाई(छ.ग.)
मो. : 77228 28880, 74005 00068

संपादन सहयोग
नराकास सचिवालय के अधिकारी एवं कार्मिक

हरीश सिंह चौहान
सहायक निर्देशक (कार्यान्वयन)
एवं कार्यालयाध्यक्ष
HARISH SINGH CHAUHAN
ASSTT.DIRECTOR (IMPLEMENTATION)

भारत सरकार

भारत सरकार
गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग,
क्षेत्रीय कार्यान्वयन कार्यालय (मध्य.)
निर्माण सदन 52ए, अरेरा हिल्स,
कमरा नं. 206, भोपाल - 462011
भोपाल (म.प्र.)
फोन : 0755–2553149

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हुई की आपकी नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति द्वारा गृह पत्रिका "महानदी" का "गाँधी एवं हिंदी विशेषांक" का प्रकाशन किया जा रहा है। मैं आशा करता हूँ की हमेंशा की भांति यह अंक भी नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति के सभी सदस्य कार्यालयों में कार्यरत कार्मिकों को पसन्द आएगा। महानदी पत्रिका निश्चित रूप से हिंदी भाषा को समर्पित है, यह पत्रिका अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम सिद्ध होगी। यह अंक भी विविधताओं से परिपूर्ण होगा। गाँधी विशेषांक के रूप में पाठकों को और अधिक जानकारी प्राप्त करने का सुअवसर प्राप्त होगा एवं निश्चित रूप से इन्हें नई व रोचक जानकारियां प्राप्त होंगी।

किसी भी राष्ट्र की भाषा उस राष्ट्र की सांस्कृतिक विरासत सभ्यता एवं तकनीकी विकास की परिचायक होती है। हमारे देश में हिंदी अपने विशिष्ट गुणों के कारण राजभाषा बनकर उभरी है। भारतीय संविधान में हिंदी को देश की सामाजिक संस्कृति के वाहक के रूप में स्वीकार किए जाने के कारण इसका स्वरूप व्यापक है।

केन्द्र सरकार के सभी कार्मिकों का यह संवैधानिक दायित्व है की राजभाषा हिंदी का अपने कार्यालय के सरकारी कामकाज में अधिकाधिक प्रयोग करें। हिंदी पत्रिका नियमित रूप से प्रकाशन हिंदी के प्रचार प्रसार की दिशा में एक सराहनीय प्रयास है।

हिंदी पत्रिका का प्रकाशन राजभाषा के प्रति आपके महत्वपूर्ण दायित्वों को भी परिलक्षित करता है।

इस पत्रिका के सम्पादक मण्डल एवं सभी रचनाकारों को मेरी ओर से हार्दिक बधाई। महानदी के विशेषांक की प्रतीक्षा में।

नव वर्ष 2020 की अग्रिम हार्दिक शुभकामनाओं सहित,

प्रतिष्ठायाम,
मुख्य कार्यपालक अधिकारी
भिलाई इस्पात संयंत्र एवं अध्यक्ष नराकास भिलाई–दुर्ग
इस्पात भवन, तृतीय तल, भिलाई 490 001 (छत्तीसगढ़)

(हरीश सिंह चौहान)

अनिर्बान दासगुप्ता
मुख्य कार्यपालक अधिकारी, भिलाई इस्पात संयंत्र
एवं अध्यक्ष, नराकास, भिलाई-दुर्ग(छ.ग.)
ANIRBAN DASGUPTA
CEO, Bhilai Steel Plant & Chairman TOLIC, Bhilai-Durg(C.G.)

स्टील अथॉरिटी ऑफ इण्डिया लिमिटेड
STEEL AUTHORITY OF INDIA LIMITED
भिलाई इस्पात संयंत्र
BHILAI STEEL PLANT

संदेश

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति भिलाई–दुर्ग राजभाषा के प्रचार–प्रसार हेतु सतत प्रयासरत है। समिति के इस अभियान के तहत ही अपनी गृह पत्रिका ''महानदी'' को नियमित विशेषांक के रूप में प्रकाशन करती है। पत्रिका के अगले अंक के प्रकाशन के क्रम में यह सुखद संयोग ही है कि वर्तमान में पूरा देश राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की 150वीं जन्म वर्षगांठ मना रहा है, ऐसे में यह उचित प्रतीत होता है की पूज्य बापू की स्मृतियों को तरोताज़ा करते हुए पत्रिका का यह अंक गाँधी एवं हिंदी के रुप में प्रकाशित किया जाए।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी एक ऐसे युगपुरुष थे, जिनके प्रति पूरा विश्व आदर की भावना रखता है। इंग्लैंड से कानून की पढ़ाई पूरी कर एक मुकदमें के दौरान आप दक्षिण अफ्रीका गये, जहां भारतीयों की दुर्दशा देखकर आप के अंदर की राष्ट्रीय भावना झंकृत हो गई, फलस्वरुप आप अपने देशवासियों को इस दुर्दशा से मुक्ति दिलाने का आंतरिक संकल्प लेकर भारत लौट आये। यहां आकर आपने अंग्रेजों की कुटिल नीतियों तथा अमानवीय व्यवहारों के विरुद्ध सत्य और अहिंसा के पथ पर चलते हुए सत्याग्रह आंदोलन प्रारंभ किया। बापू के इस राष्ट्रव्यापी अभियान को सफल बनाने तथा जन–जन तक उनके संदेश एवं उददेश्य को पहुंचाने में हिंदी उनकी सहोदरा बनी। या यूं कहा जाए कि गाँधीजी ने अपना आंदोलन हिंदी माध्यम से संचालित किया तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी।

इसी को साकार रुप देते हुए गांधीजी के जीवन में हिंदी के प्रभाव और उसके प्रयोग से प्राप्त सफलताओं की गाथा '' महानदी'' के इस अंक में प्रकाशित की जा रही है। जिसके लिये मैं समस्त संपादक मंडल एवं पत्रिका प्रकाशन से जुड़े तमाम सहयोगियों को हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

पत्रिका प्रकाशन की पुनः हार्दिक शुभकामनाओं सहित

(अनिर्बान दासगुप्ता)

सुरेश कुमार दुबे
कार्यपालक निदेशक (कार्मिक एवं प्रशासन)
SURSH KUMAR DUBEY
ED(P&A) Bhilai Steel Plant

स्टील अथॉरिटी ऑफ इण्डिया लिमिटेड
STEEL AUTHORITY OF INDIA LIMITED
भिलाई इस्पात संयंत्र
BHILAI STEEL PLANT

संदेश

मुझे यह जानकर प्रसन्नता हो रही है कि नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति भिलाई–दुर्ग की गृह पत्रिका "महानदी" का यह अंक राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की 150वीं जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में "गाँधी एवं हिंदी" विशेषांक के रूप में प्रकाशित की जा रही है। यूँ तो नराकास भिलाई–दुर्ग परिवार सदैव ही राजभाषा से जुड़े महान व्यक्तित्वों एवं उनके कृतित्वों को अपनी गृह पत्रिका में प्राथमिकता देते आ रहा है। वैसे समिति की यह स्वर्ण जयंती (50वीं) बैठक भी है, ऐसे में पूज्य बापू को श्रद्धासुमन स्वरूप इस पत्रिका का लोकार्पण करना मन को सुकून प्रदान कर रहा है।

भारत में अनेकों ऐसी विभूतियाँ और महापुरुषों ने जन्म लिये, जो अपने पीछे अनुकरणीय एवं उदात्त जीवन और महान आदर्शों की विरासत छोड़कर गए हैं। ऐसे महापुरुषों में एक 'सत्य एवं अहिंसा' के पुजारी महात्मा गांधी हैं, जिन्होंने ब्रिटिशराज से भारत को गुलामी की दासता से मुक्ति हेतु राष्ट्रीय आंदोलन का सूत्रपात किया। इस राष्ट्रव्यापी अभियान में उन्होंने राजनीति में सामाजिक सरोकार के तत्व को भी शामिल किया। तभी तो उन्होंने "एक पंथ दो काज" को साकार करते हुए हिन्दू–मुस्लिम एकता, छुआछूत का उन्मूलन, पिछड़े वर्गों की उन्नति एवं स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग हेतु समान जन–जागरण अभियान चलाया। गाँधी जी स्वयं गुजरती थे, उनकी शिक्षा–दीक्षा अंग्रेजी में हुई, फिर भी उन्होंने अपने आंदोलन को साकार रूप देने में देवनागरी लिपि में लिखित हिन्दुस्तानी (हिंदी) का ही प्रयोग किया। इस हिंदी रूपी लाठी के बल पर गाँधी जी ने अंग्रेजों को भारत छोड़ने पर विवश कर दिया।

अस्तु ! "महानदी" का यह अंक "गाँधी एवं हिंदी" के अन्योन्याश्रित संबंधो पर रूचिपूर्ण एवं ज्ञानवर्धक जानकारी उपलब्ध कराने के उद्देश्य से प्रकाशित की जा रही है। आशा है, पाठकगण हमारे टीम के इस प्रयास से अवश्य लाभान्वित होंगे। अंत में मैं इस संग्रहणीय अंक के प्रकाशन से जुड़े प्रकाशन मंडल के सभी सदस्यों को साधुवाद देते हुए, इसके सफल प्रकाशन की शुभकामना करता हूँ।

जय हिंद, जय हिंदी

(सुरेश कुमार दुबे)

डॉ. बी.एम. तिवारी
उप. महाप्रबंधक (राजभाषा) एवं सचिव,
नराकास, भिलाई-दुर्ग(छ.ग.)
DR. B.M. TIWARI
AGM(RAJBHASHA), Bhilai Steel Plant & SECRETARY TOLIC,
Bhilai-Durg(C.G.)

स्टील अथॉरिटी ऑफ इण्डिया लिमिटेड
STEEL AUTHORITY OF INDIA LIMITED
भिलाई इस्पात संयंत्र
BHILAI STEEL PLANT

संपादकीय

मानवीय सभ्यता के विकास का भाषा से गहरा संबंध है क्योंकि आदम युग से लेकर वर्तमान की 21वीं सदी तक सभ्यता के उन्नयन का मापदंड भाषा ही है।

भारत आर्यों का देश है, जहाँ की भाषा एवं लिपि के उद्‌भव एवं विकास में देवताओं का प्रत्यक्ष योगदान है, तभी तो महर्षि पाणिनी ने देवनागरी का उद्‌भव भूतभावन भगवान शंकर के डमरु से माना है

नृत्यावसाने नटराजराजौ ननाद ढक्कान् नवपंचवारान् ।
उर्द्धेतुकामा सनकादि सिद्धा नैतद्‌विमर्शे शिवसूत्रजालम।।

इस प्रकार यह माहेश्वर सूत्र के नाम से विदित देवनागरी लिपि भगवान शंकर की ही देन है, फिर इस धरा पर इससे प्राचीनतम तो कोई लिपि ही नहीं है क्योंकि वैदिककाल से लेकर अधुनातन तक देवनागरी ही हमारी लिपि है, जिसे हम भाषा के रूप में संस्कृत/हिंदी कहते हैं।

इतिहास साक्षी है, इस हिन्दुस्तानी भाषा ने ढाल बनकर मुगलों एवं अंग्रेजों से हमें बचाया है। याद कीजिए जब मुगलों ने संस्कृत को पंडितो की भाषा एवं अंग्रेजों ने हिंदी को जाहिलों एवं गंवारों की भाषा कहकर हमें पंगू बनाने का मनोवैज्ञानिक दबाव बनाया, जिसमें वे बहुत हद तक सफल भी रहे। ठीक ही कहा गया है कि जिस राष्ट्र को कमजोर बनाना हो उसकी भाषा को नष्ट कर दो। भारत इसका ज्वलंत उदाहरण है।

गाँधीजी ने इन्हीं अज्ञानताओं से हमें उबारने हेतु हिंदी में कामकाज करने हेतु प्रेरित किया। ऐसे में उनका सपना तभी पूरा होगा जब हर हिन्दुस्तानी हिंदी को अपनायेगा। इन्हीं मनोभावों की आत्मानुभूति से प्रेरित होकर नेशनल बुक ट्रस्ट से प्रकाशित श्रीमान् राकेश पाण्डेय द्वारा संकलित एवं संपादित ''गाँधी और हिंदी'' नामक पुस्तक में मूर्धन्य साहित्यकारों के आलेखों के माध्यम से जनजागृति का प्रयास किया गया है। हिंदी के लिए श्री पाण्डेयजी ने भगीरथ प्रयास किया है। एतदर्थ पाण्डेयजी के श्रीचरणों में नमन करते हुए उनके अभियान को आगे बढ़ाने के क्रम में मैंने कबीर की भाषा में '' ज्यों की त्यों धर दीन्हीं चदरियाँ '' के भाव से उन्हीं के पुस्तक से कुछ चुनिन्दा आलेखों को साभार लेते हुए पुननर्वा के रूप में ''महानदी'' में प्रकाशित कर भावी पीढ़ी को भाषा के स्तर पर राष्ट्रीय भावना से जोड़ने का गिलहरीवत प्रयास कर रहा हूँ।

अस्तु गाँधीजी के 150वीं जयंती वर्ष पर उनको विनम्र श्रद्धांजलि देते हुए '' गाँधी एवं हिंदी'' विशेषांक के रूप में ''महानदी'' का यह अंक आपको समर्पित करते हुए सुकून का अनुभव कर रहा हूँ।

आशा है, सुधि प्रबुद्ध पाठकगण हमारे टीम के इस प्रयास को अवश्य सराहेंगे।

अंत में भारतेन्दु की इस वाणी से आपको अपनाभाव समर्पित कर रहा हूँ:–

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल ।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।।

(डॉ. बी.एम. तिवारी)

मैं हिंदी की बहुत बड़ी प्रशंसक हूं

इला गाँधी–दक्षिण अफ्रिका(गाँधीजी की पौत्री)
(अनुवादक–वीरेन्द्र गोयल)

जब मुझे इस विषय पर एक लेख लिखने के लिए राकेश भाई ने अनुरोध किया गया तो मैं थोड़ा घबरा रही थी, सोच रही थी कि ऐसा करना मेरे जैसी ईंसान के लिए दुःसाहस तो नहीं। मैं हिंदी बहुत कम बोल पाती हूं, बड़ी मुश्किल से पढ़ पाती हूं, और हिंदी में लिखना तो बहुत दूर की बात है। हिंदी भाषा के प्रति अपनी अज्ञानता और शर्म के बावजूद मैं गर्व से कहती हूं कि मैं हिंदी की बहुत बड़ी प्रशंसक हूं और मैंने इस पर गाँधी जी के विचारों को पढ़ा है और मैं हिंदी के बारे में उनके विचारों की सराहना करती हूं।

एक दक्षिणी अफ्रीकी के समान स्वाधीनता के स्थानीय संघर्ष में शामिल रहकर और इस देश के पीड़ित लोगों के मन में 'स्वमन' यानि सम्मान की भावना स्थापित करते हुए, मैं और मेरे सहकर्मी अक्सर भाषा के महत्व पर चर्चा करते हैं। मेरा मानना है कि भाषा किसी व्यक्ति की मान्यताओं, जीवन–दर्शन और उसकी संस्कृति का सार होती है। यह उसमें आत्म–सम्मान और प्रतिष्ठा को बनाए रखती है। किसी समुदाय की प्रतिष्ठा को बनाए रखने के लिए भाषा और संस्कृति को समतुल्य सम्मान और पहचान देना अत्यंत महत्वपूर्ण है और मैं इस विचार की सराहना करती हूं। मैंने उस परिभाषिक शब्दावली के गूढ़ महत्व को समझने के लिए वर्षों तक पढ़ाई की है जिसमें गहराई और अर्थ छुपा होता है और वह परम्परागत विश्वासों, मान्यताओं और प्रयोग को प्रतिबंधित करती है। इन्हें विदेशी भाषा में न तो आसानी से समझाा जा सकता है और न ही इनका अनुवाद किया जा सकता है। इसके अनेक उदाहरण है, पर अभी दिमाग में कुछ उदाहरण तुरन्त आ रहे हैं, जैसे 'सत्याग्रह' और जुलू शब्द 'उबटू'। आज–तक इन शब्दों का कोई सटिक अनुवाद नहीं हो पाया है जो इन शब्दों के गहरे भाव को अभिव्यक्त कर सके। इसी तरह हम अपनी भाषा में प्रयोग किये जाने वाले और भी हजारों शब्दों और कहावतों को ढूढ़ सकते हैं जो हमारी गहन आंतरिक भावनाओं और परम्पराओं अभिव्यक्त करते हैं और इसका विदेशी भाषा में संतोषजनक अनुवाद नहीं हो सकता है। इसके लिए अपनी मातृभाषा से अनभिज्ञ करने से हम अपनी परम्पराओं और सिद्धातों से दूर हो ही जाते हैं साथ ही एक इंसान के तौर भी कमजोर बन जाते हैं।

यही कारण था कि मैंने गाँधीजी के लेखों, कृतियों ओर उनके कार्यों के द्वारा भाषा के बारे में उनके विचारों को समझने का प्रयास किया है। जहां तक मुझे याद है और मैं दृढ़तापूर्वक कह सकती हूं, गाँधीजी ने भाषा पर अपनी पहली टिप्पणी सन 1903 में दक्षिण अफ्रिका में की थी। उसी समय तक उन्होंने (वो इस देश में नौ साल गुजार चुके थे) सामान्य तौर पर भारतीय समुदाय और दक्षिण–अफ्रिका प्रतिबद्ध भारतीयों की परिस्थतियों को ध्यान पूर्वक पढ़ और समझ लिया था। उन्होंने महसूस किया था कि ज्यादातर भारतीय, चाहे गरीब हो या अमीर, अंग्रेजी भाषा से बहुत परिचित नहीं थे और इसलिए वे देश में घट रही घटनाओं से अनभिज्ञ थे। यही कारण रहा कि 1903 में जब उन्होंने एक भारतीय अखबार 'द इंडियन ओपिनियन' की शुरूआत की तो उन्होंने उसे चार भाषाओं, गुजराती, हिंदी, तमिल और अंग्रेजी, में प्रकाशित किया । इस तरह से उस अखबार ने देशवासियों को जानकारी देने, जागरूक बनाने, शिक्षित करने और एक साथ जोड़कर मजबूत बनाने के उद्देश्य को पूरा किया था। गांधी जी की कार्य प्रणाली हमेशा ही सर्वप्रथम परिस्थितियों का ध्यानपूर्वक आंकलन करने की रही है और उसके बाद ही वे उन पर अपने विचार अभिव्यक्त करते थे, या किसी अभियान या चर्चा की शुरूआत करते थे। मैं इस बात पर इसलिए जोर दे रही हूं क्योंकि इस महत्वपूर्ण विषय पर विचार करते हुए यह आवश्यक है कि भाषा पर आज से पहले जो कुछ कहा गया है उसे लागू करने से पहले हम आज की परिस्थितियों का भंलि–भांति सर्वेक्षण करें।

गाँधीजी ने यह भी पता लगा लिया था कि प्राचीन समय में अनेक भाषाओं, धर्मों और संस्कृतियों की विविधिता के बावजूद भारत एक राष्ट्र की तरह संगठित था। उपनिवेशवाद के बाद यहां विभाजन की शुरूआत हुई तथा एक राष्ट्र को प्रान्तीय नेतृत्व में विभाजित करने वाले कारकों में से भाषा एक कारक बनीं। यह प्रांतीय नेतृत्व भाषा आधारित था। यही कारण था कि उन्होंने एक ऐसी समेकक: भाषा को आवश्यकता की वकालत की जो एक बार पुनः राष्ट्र की स्थापना और निर्माण के लिए प्रयोग में लाई जा सके। उन्होंने यह देखा कि हिंदी या हिदुस्तानी भाषा में जोड़ने की अदभूत शक्ति मौजूद है जो भाषा को एक राष्ट्र की तरह संगठित कर सकती है। उन्होंने लिखा, 'भारत' के लिए एक सर्वव्यापक भाषा हिंदी होनी चाहिए, जिसे पर्शियन या नागरी लिपि में लिखने का विकल्प हो। हिंदुओं और मुसलमानों के बीच गहरे रिश्तों के लिए दोंनो लिपियों को जानना जरूरी है। और यदि हम ऐसा कर सकते हैं तो हम विदेशी भाषा अंग्रेजी को बहुत कम समय के भीतर यहां से बाहर का रास्ता दिखा सकते है। यह विचार सन् 1909 में हिंद स्वराज में व्यक्त किया गया था। यह भारत के विभाजन और भाषागत समूह के आधार पर प्रांतीय विभाजन से पहले की बात है।

सन् 1917 में बनारस में इस बात को फिर से दोहराते हुये उन्होंने भारत की अपनी भाषा को, जो लोकभाषा हो न की अंग्रेजी, फिर

से बहाल करने की आवश्यकता पर व्यापकता और पूरी दृढ़ता के साथ भाषण दिया। उन्होंने यह भी कहा किस प्रकार किसी विदेशी भाषा को अपनाना, दासता और आत्म–सम्मान को नष्ट करने की ओर ले जाता है। उन्होंने वेल्स का उदाहरण भी दिया था जो अपनी प्रान्तीय भाषा 'वेल्श' को फिर से बहाल करने का प्रयास कर रहे है।

उन्होंने हिंद स्वराज में लिखा कि 'अंग्रेजी ने हमें सिखाया है कि हम पहले एक राष्ट्र नहीं थे और हमें फिर से एक राष्ट्र बनने में शताब्दियां लग जाएंगी। यह निराधार बात है। जब वे भारत में आए थे तो उससे पहले हम एक राष्ट्र थे..... उन्होंने हमें विभाजित किया..... मेरे कहने का मतलब यह नहीं है कि क्योंकि हम एक राष्ट्र थे तो हमारे बीच कोई मतभेद नहीं थे, पर यह कहना चाहता हूं कि हमारा नेतृत्व करने वाले लोग पैदल या फिर बैल–गाड़ी में पूरे भारत में घूमते थे। वे एक–दूसरे की भाषाओं को सीखते थे और उनके बीच कोई अलगाव नहीं था। आप क्यों सोचते हैं कि 'हमारे उन दूरदर्शी पूर्वजों की क्या मंशा हो सकती है जिन्होंने धार्मिक स्थलों के रूप में (रामेश्वरम्) दक्षिण में सेतुबंध, पूर्व में जगन्नाथ और उत्तर में हरिद्वार की स्थापना की थी?... यह पैंरों तले नहीं बल्कि आधुनिक सभ्यता के नीचे दब रहा है। यह भयावह दैत्य के बोझ तले कराह रहा है। अभी भी इससे बचने का समय है, पर प्रत्येक दिन इसे मुश्किल बनाता जा रहा है। यहां पर मेरा पर्याय हिंदु, मुसलमान या पारसी धर्म के बारे में नहीं हैं, बलिक उस धर्म के बारे में जो सभी धर्मों का आधार है। हम ईश्वर से दूर होते जा रहे हैं।

यह सचमुच बहुत कष्टदायक और कठोर शब्द थे। यद्यपि इन शब्दों का बहुत ध्यानपूर्वक अध्ययन करने की आवश्यकता है, क्योंकि हमारी बहुत–सी बेचैनी इन्हीं शब्दों के सार में समाहित है। यदि भाषा हमारे मौलिक विश्वासों और जीवन के हमारे दर्शन की वाहक हैं तो अपनी भाषा पर पड़ खोने से मौलिक दर्शन से हमारा मोहभंग हो जाएगा, जिसने हमारे पूर्वजों के जीवन का मार्गदर्शन किया था। परन्तु यदि हम भाषा को विभाजक यंत्र के तौर पर प्रयोग करते हैं तो समान रूप से हम राष्ट्रत्व को विभाजित और खंडित करते हैं जिसके लिए गाँधीजी संघर्ष कर रहे थे। प्रत्येक भाषा की अपनी अलग सुन्दरता होती है, जिसमें अंग्रेजी भी शामिल हैं, और इस आधार पर यह विश्वास करना गलत होगा कि एक भाषा दूसरी भाषा से महान है। उसी तरह हमें सभी भाषाओं तथा उसे प्रयोग करने वाले लोगों के प्रति उनके मौलिक महत्व का सम्मान करने की जरूरत है।

हालांकि आज वर्तमान सदी में वैश्वीकरण, वाणिज्यीकरण और समूचे संसार का एक गांव के रूप में तीव्र रूपान्तरण जैसी परिस्थितियां हमारे सामने हैं। यह विशाल तस्वीर अपनी परंपराओं की रक्षा के प्रति हमारी चिंताओं तथा जो कुछ सामान्य है और जो कुछ अद्‌भुत है उनके बीच के विरोधाभास के मध्य एक नए संतुलन की मांग करती है। हमारे और बाहर वाले की बढ़ती मानसिकता की प्रवृति पर रोक लगाने तथा बहुसंस्कृतिवादिता के आगमन और अंतर्जातीय विवाहों की आवश्यकता है। सबसे महत्वपूर्ण मुद्‌दा वैश्विक समुदाय के बीच आपसी तालमेल बनाने का है। इस संदर्भ में हमें इन दोनों बातों पर विचार करना होगा–पहला अपनी भाषा के महत्व, जो अपनी पारिभाषिक शब्दावली के भीतर हमारे महत्वपूर्ण मानकों व मूल्यों को लेकर चलती है, और दूसरा, हम वृहत वैश्विक समुदाय में अपने जीवन को कैसे स्वीकार करते है। बहुत से लोगों ने उस विचार को अभिव्यक्त किया है जिसे गाँधीजी ने वर्षों पहले स्पष्ट किया था कि हम सभी को एक से अधिक भाषाओं के ज्ञान को ग्रहण करना चाहिए। गाँधीजी का सपना था कि हर बच्चे को उसकी मातृभाषा में पढ़ाया जाना चाहिए, और कम से कम शुरूआती समय में तो ऐसा अवश्य किया जाना चाहिए। उन्होंने मातृभाषा में शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया था, और अपना स्वयं का उदाहरण प्रस्तुत किया था कि किस प्रकार वह उस समय तक गणित समझने में असमर्थ थे, जब तक कि उन्हें उनकी अपनी भाषा में गणित नहीं समझाया गया। उन्होंने कहा था कि इसके बाद ही उन्हें वह विषय बहुत सरल लगने लगा था।

इसके बाद उन्होंने एक साक्षी भारतीय राष्ट्रभाषा की आवश्यकता पर बल दिया जो इस देश के सभी लोगों को आपस में जोड़ने का स्त्रोत बने। उन्होंने हिंदुस्तानी का सुझाव दिया था। लेकिन यह उस समय तक एक सपना ही रहेगा जब तक कि इसे वे सभी लोग स्वीकार नहीं करते जो इस देश में रहते हैं। इसके साथ ही मैं यह भी विश्वास करती हूं कि गाँधीजी के लिए सबसे बड़ी चिंता सभी–सर्वोदयों के लिए अवसरों के द्वार खोलने की भी और एक समानतावादी समाज की रचना करने की थी जिसके लिए हमारे सामर्थ्य में जो कुछ भी हो वह सब करें, जहां कम से कम विभाजन और भेदभाव हो। जिस बदलाव को लाने का प्रयास गांधीजी कर रहे थे उसके पहिये में एक ही कंगुरा था और वह था भाषा। यदि हम इन आदर्शों को और आगे बढ़ाने के चाहत रखते हैं तो हमें सभी मसलों और मुद्‌दों का माहिर होने की आवश्यकता है, जैसे हमें अपनी भाषा को सीखने की इच्छा को मन में बैठाना होगा, और अपने मूल्यों को सीखना होगा तथा जो अनेक शर्तें हमें एक इंसान के रूप में स्थापित करती है और हमें अपनी समृद्धि संस्कृति धरोहर के लिए अभिमान रहित वाहक बनती है, उसकी गहरी और विशुद्ध समझ हासिल करनी होगी।

आप मुझे जंजीरों में जकड़ सकते है, यातना दे सकते हैं,
यहॉ तक की आप शरीर को नष्ट कर सकते हैं, लेकिन आप कभी भी मेरे विचारों को कैद नहीं कर सकतें.
महात्मा गाँधी

हिंदी के लिए गाँधी जी के प्रयत्न

काका कालेलकर

''हिदी ही भारत वर्ष की राष्ट्रभाषा हो सकती।'' इस सिद्धांत को लेकर गांधीजी ने भारत में एक आंदोलन अनुग्रहपूर्वक चलाया। इससे पहले उन्होंने अपनी किताब 'हिंद स्वराज्य' (1908) में राष्ट्रभाषा के तौर पर हिंदी की ताईद की ही थी। किंतु 1915 में भारत में आते ही उन्होंने हिंदी के लिए बकायदा आंदोलन चलाया।

गांधीजी के जैसा बड़ा समर्थक पाकर हिंदी साहित्य सम्मेलन को बड़ा बल मिला। दो दफा हिंदी साहित्य सम्मेलन ने उन्हें सभापति बनाया। पहले दफा सभापति बनते ही गांधीजी ने दक्षिण भारत के चार प्रांतों में हिंदी का प्रचार एक सामर्थ संस्था स्थापित करके जोरों से चलाया। दूसरी दफा भारत के बाकी के अहिंदी प्रांतों में प्रचार करने का प्रबंध किया। और इस प्रकार समस्त भारत में हिंदी के प्रति एक प्रचण्ड और अनुकूल वायुमण्डल तैयार हुआ।

गाँधीजी के साथ काम करने वाले हम लोगों को उत्तर भारत की परिस्थिति का पूरा ख्याल नहीं था। प्रचार करते–करते हम परिस्थिति समझ गये। स्वयं गाँधीजी शुरू में ही समझ गये थे कि राष्ट्रभाषा के तौर पर और राज्यभाषा के तौर पर भी हिंदी को स्वीकार करने में सच्ची कठिनाई उर्दू की ओर से नहीं, बल्कि अंग्रेजी की ओर से आने वाली है। वह यह भी समझ गये थे कि अंग्रेजी को अखिल भारत की सरकारी भाषा बनाने की हिम्मत जब अंग्रेजों में नहीं थी, तब भारत के देशभक्तों के मन में था कि अंग्रेजी सीखने से ही हम राज्यकर्ताओं के समान सामर्थ बनेंगे। अग्रेंजी के द्वारा भारत की एकता एक तरफ से बन रही थी। इसका अनुभव भी देश के नेता कर रहे थे। सन् 1857 के बाद भारत के नेताओं में भारत की एकता के और सेवा के जो भी स्वप्न खड़ें हुए थे, अंग्रेजी भाषा की मदद लेकर ही वे स्वरूप पकड़ सकते थे। सन् 1885 में कांग्रेस की स्थापना हुई। तब से राष्ट्र के उस समय के नेताओं को अंग्रेज सरकार के साथ बातचीत करने के लिए और राष्ट्र की नीति संगठित करने के लिए अंग्रेजी भाषा ही उपयुक्त मालूम हुई थी। तब से लेकर आज–तक भारत का अखिल भारतीय चिन्तन और सामाजिक जीवन प्रधानतया अंग्रेजी में ही चलता आया है।

अंग्रेजी भाषा के प्रति यहां के लोगों का उत्साह देखकर अंग्रेजों को आश्चर्य भी हुआ, आनंद भी हुआ और तब से उनकी मनोकांक्षा बढ़ी। नतीजा यह हुआ कि सारे भारत में अंग्रेजों का राज्य चलने के लिए जो देशी लोग तैयार किये गये उनके लिए राज्यसभा और राष्ट्रभाषा अंग्रेजी ही रही। देश के अधिकांश नेता अंग्रेजी द्वारा ही अपने–अपने आंदोलन चलाते थे। लिखा–पढ़ी भी अंग्रेजी में ही करते थे। और यदि देशी भाषा में खत लिखने पड़ते तो अंत में हस्ताक्षर तो अंग्रेजी में करने में ही वो अपनी शान समझते थे।

जब गांधीजी दक्षिण अफ्रिका से भारत लौटे, तब उन्हें देखा कि हिंदी को लड़ना है अंग्रेजी के खिलाफ। और अंग्रेजी के पक्ष में तीन जबरदस्त ताकतें हैः

1. स्वयं अंग्रेजी सरकार।
2. कांग्रेस के और भारत के अधिकांश नेता, और।
3. अंग्रेजों का राज्य चलाने वाले अंग्रेजी और देशी राज्य–कर्मचारी, जिसके लिए लोकमान्यतिलक ने नाम रखा था नौकरशाही। अंग्रेजी के पक्ष में कौन नहीं थे, यही ढूढ़ना मुश्किल था। देश में जो राजनितिक और संस्कृतिक राष्ट्रीयता जागृत हुई थी, उससे मन में अंग्रेजी का अधिराज्य तोड़ने का विचार आया और राष्ट्रीयता के प्रचार में अंग्रेजी के विरोध को स्थान भी मिला। किन्तु इस कार्य के लिए बकायदा संगठित और रचनात्मक कार्य करना जरूरी है और मुमकिन भी है, इस बात का साक्षात्कार केवल गांधीजी को ही हुआ था।

अंग्रेजों की फूट डालो नीति

अंग्रेजी का विरोध करने वाले लोगों के मन में देसी भाषाओं की उन्नति की बात थी ही। ऐसे प्रयत्नों को चंद अंग्रेज अच्छा बढ़ावा भी देने लगे। किंतु सन् 1857 के अनुभव के बाद अंग्रेजों ने तय किया कि भारत के राजनीतिक और सांस्कृतिक आंदोलनों में हिंदु–मुसलमानों को एक नहीं होने देना चाहिए।

इस नीति के अनुसार चंद अंग्रेज हिंदीवालों को समझाने लगे कि पठान और मुगलों जैसे मुसलमानों के आतंक से आपको छुड़ाने वाले हम ही है। हम आपको हिंदी के प्रचार में मदद करेंगे। आप हिंदी को उर्दू के प्रभाव से मुक्त कीजिए। नागरी प्रचारिणी सभा और उससे उत्पन्न हिंदी साहित्य सम्मेलन, दोंनों को किन–किन अंग्रेजों से प्रोत्साहन मिला इसका इतिहास दुनिया जानती है।

दूसरी ओर मुसलमानों को कांग्रेस से दूर रखने के लिए अंग्रेजी ने समझाना शुरू किया कि हम भारत के राज्यकर्ता बनें उससे पहले आप लोगों का ही राज था। इसलिए तो हमने रूपए के सिक्के पर अंग्रेजी के साथ उर्दू में लिखा है–'एक रूपया'। नागरी में लिखने से हमने इंकार किया। अंग्रेजी के बदले यहां की कोई राष्ट्रभाषा बन सकती है तो वह उर्दू ही है। (ऐसा उन्होंने कहीं स्पष्ट कहा है या नहीं, मुझे याद नहीं।)

लेकिन हिंदी का प्रचार करते हम इतना देख सके कि हिंदी साहित्य सम्मेलन को उर्दू से लड़कर हिंदी को राष्ट्रभाषा बनानी है और गांधीजी को तो उर्दू से जरूरी समझौता करके हिंदु–मुसलमानों की सम्मिलित शक्ति के द्वारा अंग्रेजी को हटाकर उस स्थान पर हिंदी को बिठाना है।

इन दो दृष्टियों के बीच जो खींचतानी चली, वही है गांधी–युग के राष्ट्रभाषा–प्रचार के इतिहास का सार। इन खींचातानी में एक प्रसंग ऐसा आया, जब पं. सुंदरलालजी ने गांधीजी को एक 'अल्टीमेटम' दिया कि अगर आप राष्ट्रभाषा को हिंदी कहेंगे तो मुसलमान आपके साथ नहीं रहेंगे। हिंदी का प्रचार हिंदुओं का ही प्रचार रहेगा। राष्ट्रभाषा को हिंदुस्तानी कहना ही उचित है। इस बात को अगर आप नहीं मानेंगे तो हमें हिंदी से अलग हिंदुस्तानी का आंदोलन पड़ेगा।

गाँधीजी की हिंदी–सेवा

गाँधीजी ने दक्षिण के चार प्रांत–आन्ध्र, तमिलनाडु, केरल और कर्नाटक को हिंदी के अनुकूल बनाया था। बाद में बाकी के प्रांत असम, बंगाल, उड़ीसा, महाराष्ट्र, गुजरात और सिंध में हिंदी का प्रचार चलाकर वहां के लोगों को भी हिंदी के अनुकूल बनाया। राजगोपालाचार्य, रवीन्द्रनाथ, जवाहरलाल, अलीबंधु, डॉ. अंसारी, डॉ.जाकिर हुसैन, हकीम अजमल खां, सुभाष बाबू, सत्यमूर्ति जैसे प्रभावशाली नेताओं को हिंदी के अनुकूल बनाना मामूली करामात नहीं थी। गांधीजी ने अपनी सर्वसमन्वयकारी नीति से उन सब लोगों का विरोध बिल्कुल नरम किया था। बहुतों को अपनी तरफ खींच भी लिया था। अब यह सारा कार्य हिंदी–हिंदुस्तानी के नाम का झगड़ा चलाकर बर्बाद कर डालना गांधीजी को इष्ट नहीं मालूम हुआ। उन्होंने प्रातः स्मरणीय राजेन्द्रबाबू जैसों को साथ में लेकर राष्ट्रभाषा का प्रचार 'हिदी–हिंदुस्तानी' जैसे द्वन्द्व नाम से चलाना शुरू किया।

बस इस पर हिंदु–मुसलमान दोनों बिगड़ें। हिंदु कहने लगे कि 'हिंदुस्तानी की आड़ में उर्दू को लाने की यह चालबाजी है। हम इसका जी–जान से विरोध करेंगे। उर्दू भले इस देश की एक प्रादेशिक या साम्प्रदायिक भाषा बनकर रहें, उसकी उन्नति में हम मदद भी करेंगे। कायस्थों ने उर्दू की सेवा कम नहीं की है। किंतु उर्दू हर्गिज राष्ट्रभाषा नहीं बन सकेगी।

उधर मुसलमान कहने लगेः ''हम इस देश के राज्यकर्ता थे। हमारी राज्यभाषा थी पर्शियन(फारसी) हमारी धर्म भाषा थी अरबी। हमने इन दोनों का आग्रह छोड़ दिया और एक जनता की भाषा को अपनाया। उसमें अरबी–फारसी के शब्द तो आने ही थे और इस भाषा के लिए किसी जमाने की अंतर्राष्ट्रीय लिपि हमने चलाई। भारतीय राष्ट्रीयता के लिए हमने इतना समझौता किया। अब उर्दू को हटाकर हिंदुस्तानी की आड़ में आप हिंदी चलाना चाहते हैं? हमें यह मंजूर नहीं है। अब हमें नागरी लिपि भी सीखनी पड़ेगी। यह तो ज्यादती है।''

हम लोगों ने उत्तर भारत में घूमकर लोगों को समझाने की कोशिश की कि हम राष्ट्रभाषा के लिए इस वक्त दोनों लिपियों को स्वीकार करें–नागरी और उर्दू । आगे जाकर जो टिकेगी सो टिकेगी। इसी तरह हिंदी और उर्दू दोनों शैलियों की समस्त शब्दावली हम मंजूर करें। राष्ट्रभाषा में दोनों के लिए स्थान है। इनमें से कौन–से शब्दों का प्रचलन बढ़ेगा, हम आज नहीं कह सकते।

मैंने हिंदी वालों को यह भी कहा कि 'आप उर्दू को साँप समझते हैं। मैं उसे घर की एक स्वदेशी भाषा समझता हूं। लेकिन राष्ट्रभाषा का स्थान लेने की दृष्टि से उर्दू मरा हुआ साँप है जिंदा साँप है अंग्रेजी। आप मरे हुए साँप को पीट रहे हैं और जिन्दा साँप को दूध पिला रहे हैं। इससे हिंदी का भला नहीं होगा।'

स्वराज्य के बाद

जब भावनाएं और वहम बढ़ जाते हैं, तब ठंडे दिमाग से सोचने की शक्ति ही गुम हो जाती है। स्वराज्य तो हुआ, किंतु राष्ट्रभाषा का पक्ष पहले जैसा मजबूत नहीं रहा। अंग्रेजी के पक्ष में आत्मविश्वास और दूरदर्शिता थी। उसने हिंदी की गणेश–पूजा की। हिंदी नाम मान्य रखा। शब्दावली के लिए हिंदुस्तानी की नीति संविधान में दर्ज की गई और हिंदी को भविष्य की तारीख का चेक देकर अंग्रेजी को मजबूत किया।

इस तरह राष्ट्रभाषा–प्रचार का गाँधी–युग समाप्त हुआ और नेहरू–युग शुरू हुआ, जो अब भी चल रहा है। एक दफा राजाजी ने कहा था कि राष्ट्रभाषा के लिए जो भी करना लाजमी है, नेहरूजी अवश्य करेंगें, लेकिन उनका दिल तो अंग्रेजी के ही पक्ष में है।

मैं यह लिख रहा हूं उस दिन तक अंग्रेजी का पक्ष ही मजबूत हो रहा है। अंग्रेजी को जो लोकमान्यता प्रारंभ में मिली थी, अभी पूरी नष्ट नहीं हुई है। गाँधीजी ने जोर चलाया इसलिए देसी भाषा के पक्षपाती गाँधी–प्रवृति में शरीक हुए और ऐसा आभास हुआ मानो सारा राष्ट्र हिंदी के पीछे हैं। असल बात यह है कि गाँधीजी के प्रयत्न के कारण हिंदी को केवल गणेश–पूजा का स्थान मिल सका। हिंदी की सारी शक्ति को उर्दू का विरोध करने में ही क्षीण हो गई। जिन्हें हम 'हिंदीवाले' कहते हैं, उनमें भी राज्यभाषा के तौर पर अंग्रेजी को पसंद करने वाले लोग कम नहीं हैं। दक्षिण भारत और पूर्व भारत के लोग हिंदी का विरोध करते हैं और अंग्रेजी की ताईद करते हैं।

यह है आज तक का इतिहास किन्तु मैं **आंतरिक श्रद्धा से कहता हूं कि अंग्रेजी का राज चाहे जितना बढ़े, अंग्रेजी भारत की राष्ट्रभाषा कभी बनने वाली नहीं है। मैं यह भी जानता हूं कि अगर कोई देसी भाषा राष्ट्रभाषा बन सकती है तो वह हिंदी ही है।** अंग्रेजी भाषा की आंतरिक शक्ति अमर्याद है, अनन्त है। लेकिन वह इस देश की भाषा बन नहीं सकती। हिंदी वालों ने अंध अभिमानवश हिंदी की असेवा बहुत की। किन्तु **हिंदी का स्वदेशीपन, हिंदी में रही संस्कृत की शब्दावली और हिंदी में प्रादेशिक शब्द हजम करने की शक्ति–ये तीन गुण इतने जबर्दस्त हैं कि हिंदी स्वराज्य–भारत की राज्यभाषा और राष्ट्रभाषा होकर ही रहेगी।**

शिक्षा का माध्यम और गाँधीजी

रामधारी सिंह दिनकर

शिक्षा का माध्यम और शासन का माध्यम, ये दोनों सवाल एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। ऐसा नहीं हो सकता कि पढ़ाई तो अंग्रेजी में चलती रहे और राजकाज के काम जनता की भाषाओं में चलें अथवा राजकाज के काम तो अंग्रेजी में चलें तथा पढ़ाई की भाषा जनता की भाषा हो। गुलाम भारत का व्यक्तित्व फटा हुआ था और वह आज भी फटा हुआ ही है। इस देश की जनता अंग्रेजी नहीं जानती, न सभी अंग्रेजी पढ़े–लिखे लोग अंग्रेजी के द्वारा अपने को अभिव्यक्त कर सकते है। तब भी पढ़ाई यहां अग्रेजी में चलती है। तब भी शासन और न्याय की भाषा यहां अंग्रेजी भाषा है। राजनीतिज्ञों की कमजोरी यह है कि वे वोट तो जनता की भाषा मांगते हैं, मगर मंत्री बन जाने पर नोट अंग्रेजी में लिखने लगते हैं। और जजों की हालत यह है कि उनकी न्यायप्रिय आत्मा इस विचार से दहलती ही नहीं कि उनके कठघरों में खड़े मुजरिम अपने कसूर के बारे में होने वाली बहसों का मतलब नहीं समझते, न उन तर्कों का उन्हें ज्ञान होता है, जिनके कारण उन्हें फांसी या आजीवन कारावास की सजा सुनाई जाती है।

गाँधीजी अंग्रेजी हटाने के काम को इतना जरूरी समझते थे कि एक बार उन्होंने कहा था ''यह इतना बड़ा काम है कि देश के सभी नेता एक इसी काम में लग जाएं, तो वह भी उचित ही होगा।'' आजादी की लड़ाई में बारह आना महत्व वे इस बात को देते थे कि स्कूलों, कॉलेजों और दफ्तरों की भाषा भारतीय भाषा किस तरह बनाई जाए।

हमें तो सतत प्रयत्नपूर्वक अपनी गुलामी से मुक्त होना है, फिर वह चाहे शिक्षणात्मक हो या आर्थिक अथवा सामाजिक या राजनीतिक हो। तीन–चौथाई लड़ाई तो वही प्रयत्न होगा, जो इसके लिए किया जाएगा किंतु, अंग्रेजी का विरोध वह केवल भावानात्मक कारणों से नहीं करते थे, यद्यपि भावनात्मक कारणों को भी वह काफी तर्कसम्मत समझते थे। उन्होंने कहा था, ''अंग्रेजी की आज की इज्जत न तो हमारे सम्मान को बढ़ाने वाली है, न वह लोकशाही के सच्चे जोश को पैदा करने में सहायक होती है।''

यहां सोचने की बात यह है कि भाषा का लोकशाही से क्या संबंध है और वह लोकशाही को बढ़ावा कैसे दे सकती है? गाँधीजी मानते थे कि विधान सभाएं, अदालतें और कचहरियां, सार्वजनिक सभाएं, अखबार और स्कूल, ये सब के सब शिक्षा के माध्यम हैं और ये अगर जनता की भाषा में काम करते हों तो जनता पर उसका प्रभाव पड़ता है। किन्तु ये संस्थाएं जब विदेशी भाषा के द्वारा काम करती हैं, तब ये जनता के लिए मुहरबंद किताब बन जाती है।

इसी प्रकार गाँधीजी का यह भी विचार था कि समाज की प्रगति तब तक रोककर रखी नहीं जा सकती, जब तक उसका प्रत्येक सदस्य शिक्षित न बना दिया जाए। साक्षरता से भी अधिक शिक्षा संगति से फैलती है। मगर भारतीय समाज जिन लोगों को शिक्षित बनाता है उनकी भाषा विदेशी होती है। नतीजा यह होता है कि जनता उन शिक्षितों की संगति का लाभ नही उठा सकती। गाँधीजी अंग्रेजी के द्वारा हम जो ज्ञान ग्रहण करते हैं वह हर्मी तक महदूद रह जाता है, यहां तक कि उसका शतांश भी हमारे अपने घर या पड़ोस में नहीं फैल पाता।

गांधी जी यह भी जानते थे कि स्कूलों और कॉलेजों का मुख्य कार्य छात्रों के भीतर ज्ञान संचारित करना है। किंतु शिक्षा का माध्यम जब विदेशी भाषा होती है, तब छात्रों का सारा समय भाषा सीखने में चला जाता है और ज्ञान की असली बातें वे कम सीख पाते हैं। सन् 1938 ई. में 'हरिजन सेवक' में उन्होंने अपने अनुभव पर एक लेख लिखा, जिसमें उन्होंने बताया था कि :

'हां, यह अब मैं जरूर देखता हूं कि जितना गणित, रेखागणित, बीजागणित, रसायनशास्त्र और ज्योतिष सीखने में मुझे चार साल लगे, अगर अंग्रेजी के बजाय गुजराती में मैंने उन्हें पढ़ा होता तो उतना मैंने आसानी से एक ही साल में सीख लिया होता।

मेरे पिता को कुछ पता न था कि मैं क्या कर रहा हूं। मैं यदि चाहता तो भी अपने पिता की इस बात में दिलचस्पी पैदा नहीं कर सकता था कि मैं क्या पढ़ रहा हूं। इस प्रकार अपने ही घर में मैं बड़ी तेजी के साथ अजनबी बनता जा रहा था।

भारत में यह भी देखा गया है कि पिछले सौ वर्षों में विश्वविद्यालयों से जो स्नातक निकले, उनका स्वास्थ्य ग्रामीणों के स्वास्थ्य से

कमजोर रहा। गाँधीजी इस दुरावस्था को भी कृत्रिम शिक्षा–पद्धति का स्वाभाविक परिणाम समझते थे।

मेरा यह सुचिन्तित मत है कि जिस रूप में अंग्रेजी की शिक्षा यहां दी गई है, उससे अंग्रेजी पढ़े–लिखे हिंदुस्तानी कमजोर हो गए हैं। इस पद्धति ने भारतीय छात्रों की स्नायविक उर्जा पर भयानक दबाव डाला है तथा हम सबको नक्काल बना दिया है। कोई भी जाति नक्कालों की कौम पैदा करके बड़ी नहीं हो सकती। मेरा दृढ़विश्वास है कि चैतन्य, कबीर, नानक, गुरू गोविन्द सिंह, शिवाजी और महाराणा प्रताप, राममोहन राय और तिलकजी की अपेक्षा कहीं बड़े मनुष्य थे।अब तो खैर देश में ऐसे बहुत–से लोग हैं, जो यह मानते हैं कि मातृभाषाओं के द्वारा सारी शिक्षा का प्रबंध न करकें भारतवर्ष अपनी अगली पीढ़ियों को पूर्णरूप में विकसित होने से रोक रहा है। मगर इस दर्द की जितनी पूर्ण और जैसी तीखी अनुभूति महात्मा गाँधी को हुई थी, वैसी अनुभूति और किसी को नहीं हुई। सन् 1908 ई. में हिंद स्वराज्य नामक पुस्तक में गाँधीजी ने घोषणा की थी कि .....

'लाखों लोगों की अंग्रेजी का ज्ञान कराना उन्हें गुलाम बनाना है। मैकाले ने भारत में जिस शिक्षा की नींव रखी, उसने हमें हम सबको गुलाम बना दिया है।'

अंग्रेजी माध्यम की हांनियाँ

सन् 1917 ई. में 27 दिसम्बर के दिन कलकत्ता में भाषण देते हुए गाँधीजी ने विदेशी शिक्षा–पद्धति से उत्पन्न दोषों को बड़ें ही मार्मिक शब्दों में जनता के समक्ष रखा थाः

'यदि हम अंग्रेजी के आदी नहीं हो गए होते, तो यह समझने में हमें देर नहीं लगती कि अंग्रेजी के शिक्षा का माध्यम होने से हमारी बौद्धिक चेतना जीवन से कटकर दूर हो गई है, हम अपनी जनता से अलग हो गए हैं, जाति के सर्वश्रेष्ठ दिमागों का विकास रूक गया है और जो विचार हमें अंग्रेजी के माध्यम में मिले उन्हें हम जनता में फैलाने में नाकामयाब रहे है। पिछले साठ वर्षों से हमने विचित्र–विचित्र शब्दों को केवल रटना सीखा है, तथ्यपूर्ण ज्ञान को पचाने के बदले हमने शब्दों का उच्चारण सीखा है। जो विरासत हमें अपने बाप–दादों से हासिल हुई, उसके आधार पर नव–निर्माण करने के बदले हमने उस विरासत को भूलना सीखा है। इस दुर्गति की मिसाल सारी दुनिया के इतिहास में नहीं है। यह तो राष्ट्रीय शोक अथवा ट्रेजडी का विषय है। आज की पहेली और सबसे बड़ी समाज सेवा यह है कि हम अपनी देशी भाषाओं की ओर मुड़ें और हिंदी को राष्ट्रभाषा के पद पर प्रतिष्ठित करें। हमें अपनी सभी प्रादेशिक कार्यवाही अपनी–अपनी भाषाओं में चलाना चाहिए तथा हमारी राष्ट्रीय कार्यवाही की भाषा हिंदी होनी चाहिए। जब तक हमारे स्कूल और कालेज भिन्न देशी भाषाओं में शिक्षा देना प्रारम्भ नहीं करते, तब तक हमें आराम लेने का अधिकार नहीं है।

अंग्रेजी के समर्थकों की ओर से बराबर यह दलील दी जाती थी और जब भी दी जाती है कि अंग्रेजी के कारण ही देश में राममोहनराय, लोकमान्य तिलक, जगदीश चंद्र बशु और रविन्द्रनाथ का उदभाव संभव हुआ। गाँधी जी को यह दलील जरा भी अपील नहीं करती थी।

''मैं इस बात में यकीन लाने से इकरार करता हूं कि यदि राममोहनराय और लोकमान्य तिलक ने अंग्रेजी न पढ़ी होती, तो वे विचार उनके भीतर नहीं जागते, जिनके कारण वे मशहूर है। भारत में जितने भी अंधविश्वास प्रचलित है, उसमें से सबसे भयानक अंध–विश्वास यही है, जिसके अधीन हम यह सोचते हैं कि अंग्रेजी पढ़े बिना संविधानता के विचार नहीं उठ सकते, न विचारों की यथातथ्यता विकसित की जा सकती है। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि पिछली आधी सदी में देश में शिक्षा की एक ही पद्धति चलती रही, संपूर्ण देश पर अभिव्यक्त का एक ही माध्यम थुपा रहा है। अतः यह सोचने का आधार ही नहीं है कि अगर स्कूल और कालेज वाली शिक्षा हमें नहीं मिलती होती, तो आज हम क्या होते? लेकिन यह बात तो हम जानते हैं कि पचास वर्ष पूर्व की अपेक्षा आज हम कहीं अधिकर दुर्गति में है। भारतवासी आज पहले की अपेक्षा ज्यादा कमजोर है और वे अपनी रक्षा आप नहीं कर सकते। कोई यह न कहें कि इसका जिम्मा वर्तमान शासन पद्धति पर है, क्योंकि इस शासन पद्धति का सबसे दूषित अंग उसकी शिक्षा पद्धति ही है। इस शिक्षा पद्धति की कल्पना छूट से उठी थी, इसका जन्म भी छूट से हुआ है, क्योंकि अंग्रेजी शासकों ने शिक्षा की देशी पद्धति को व्यर्थ से भी बुरा मान लिया था। इस शिक्षा पद्धति लालन–पालन पाप के मार्ग से हुआ है, क्योंकि इस पद्धति का सारा उददेश्य यह है कि हिंदुस्तानीयों के शरीर, मन औार आत्मा को

ठीगना कैसे बनाए जाए ?''

इसी लेख में गाँधीजी ने यह भी कहा था कि अंग्रेजी में सोचने की बाधा यदि उसके सामने नहीं होती, तो राममोहनराय और भी बड़े सुधारक तथा तिलकजी और भी बड़े विद्वान हुए होते। इस प्रकार प्रोफेसर जगदीश चंद्र बसु के बारे में उन्होंने कहा था कि जगदीशबसु कोई वर्तमान शिक्षा की उपज नहीं थे, वह तो भंयकर कठिनाईयों और बाधाओं के बावजूद अपने परिश्रम की बदौलत ऊंचा उठे और उसका ज्ञान लगभग ऐसे बन गया, जो सर्वसाधारण तक नहीं पहुच सकता।

मातृभाषा ही माध्यम हो

शिक्षा का माध्यम बदलने के प्रश्न पर गाँधीजी जिस व्याकुलता से सोचते थे, उस व्याकुलता से उन्होंने कभी भारतीय संविधानता पर विचार नहीं किया था। मातृभाषा मनुष्य के विकास के लिए उतनी ही स्वाभाविक है, जितना छोटे बच्चे के शरीर के विकास के लिए माँ का दूध। और कुछ हो भी कैसे सकता है? बच्चा अपना पहला पाठ अपनी माँ से ही सिखता है। इसलिए मैं बच्चों के मानसिक विकास के लिए उन पर माँ की भाषा को छोडकर दूसरी कोई भाषा लादना मातृभूमि के प्रति पाप समझता हूं।

मेरा यह विश्वास है कि राष्ट्र के जो बालक अपनी मातृभाषा के बजाय दूसरी भाषा में शिक्षा प्राप्त करते थे, वे आत्महत्या ही करते हैं। यह उन्हें अपने जन्मसिद्ध अधिकार से वंचित करती है। विदेशी माध्यम से बालकों पर अनावश्यक जोर पड़ता है। वह उसकी सारी मानसिकता का नाश कर देता है। विदेशी माध्यम से उसका विकास रूक जाता है और वे अपने घर और परिवार से अलग पड़ जाते है। इसलिए मैं इस चीज को पहले दर्जे का राष्ट्रीय संकट मानता हूं।

अगर हमारे हाथ में तानाशाही सत्ता हो, तो मैं आज से ही विदेशी माध्यम के जरिए अपने लड़के और लड़कियों की शिक्षा बंद कर दूं, और सारे शिक्षकों और प्रोफेसरों से यह माध्यम तुरंत बदलवा दूं या उन्हें बरखास्त करा दूं। मैं पाठ्य पुस्तकों की तैयारी का इंतजार नहीं करूगां। वो माध्यम के परिवर्तन के पीछे–पीछे चली जाउगीं। यह एक ऐसी बुराई है, जिसका तुंरत इलाज होना चाहिए।

शिक्षा का माध्यम तो एकदम और हर हालत में बदला जाना चाहिए और प्रांतीय भाषाओं को उनका वाजिब स्थान मिलना चाहिए। ये जो काबिले सजा बरबादी रोज–ब–रोज हो रहा है, इसके बजाए तो अस्थायी रूप से, अव्यवस्था हो जाना भी मैं पसन्द करूगां। गाँधी जी की इस व्याकुलता के प्रसंग में आज की स्थिति पर सोचते हुए मन को तकलीफ होती है। तकलीफ की खास बात यह है कि गाँधीजी के प्रेरणाओं से चालित होकर इतिहास तो आगे बढ़ रहा है, मगर नेता पीछे–पीछे छूट रहे हैं और अगर इतिहास के साथ कदम–से–कदम मिलाकर चलने को नेता तैयार भी होते हैं तो देश के शिक्षा–शास्त्री कह बैठतें हैं, माध्यम परिवर्तन काम जोखिम का काम है। एक जगह के प्रोफेसर और छात्र दूसरी जगह कैसे जायेगें? और, किताबें कहां है?

माध्यम परिवर्तन का निर्णय

शिक्षा शास्त्रीयों की इस भीरूता का अंदाज गाँधीजी को पहले से ही था और शिक्षा के माध्यम परिवर्तन के प्रश्न पर वे शिक्षा शास्त्रीयों की राय का इंतजार नहीं करना चाहते थे। मेरी सम्मति में यह कोई ऐसा प्रश्न नहीं है जिसका निर्णय शिक्षा शास्त्रीयों के द्वारा हो। वे इस बात का निर्णय नहीं कर सकते कि किस स्थान के लड़कों–लड़कियों की पढ़ाई किस भाषा में हो। क्योंकि इस प्रश्न का निर्णय तो हर एक स्वतंत्र देश में पहले ही हो चुका है। न वे यही निर्णय कर सकते हैं कि इन विषयों की पढ़ाई होती है। उन्हें तो बस यही सुविधा प्राप्त है कि राष्ट्र की इच्छा को यथा संभव सर्वोत्तम रूप में अमल में लायें। जबतक हम शिक्षित वर्ग इस प्रश्न के साथ खिलवाड़ करते रहेंगें, मुझे इस बात का बहुत भय है कि हम जिस स्वतंत्र और स्वस्थ भारत का स्वपन देखते हैं, उसका निर्माण नहीं हो सकेगा।

जो काम शुरू नहीं होता, उसके सामान बाजार में पाए जाते। जो काम शुरू हो जाते हैं, उसके सामान बाजार में मिलने लगते हैं। जब गाँधीजी अहमदाबाद में गुजराती के माध्यम से पढ़ाई शुरू करने का आदेश दिया, शिक्षकों ने यही कहा था कि बापू किताबें कहां है? गाँधीजी क्षणभर को चुप रहकर बोले, शिक्षक बिना किताबों के पढ़ायें। इस प्रकार गुजराती के माध्यम से पढ़ाई शुरू हो गई और पीछे पाठय साहित्य भी तैयार हो गया। फीनिक्स आश्रम में भी गांधीजी को यही अनुभव हुआ था और वे भारत आने के पहले ही इस मत के हो चुके थे

कि माध्यम पहले बदलना चाहिए, किताबें बाद को तैयार होगी। यह कहना बिल्कुल गलत कि मात्र भाषा के जरिए टेक्निकल तालीम देने के लिए बड़ी तैयारी और बड़ी खोज की जरूरत होगी।

यदि शिक्षा का माध्यम धीरे–धीरे बदलने के बजाय एकदम बदल दिया जाए तो बहुत शीघ्र हम यह देखेंगें कि आवश्यकता को पूरा करने के लिए पाठय पुस्तकें प्राप्त हो रही है और अध्यापक भी। बेशक, सफलता की शर्त यह है कि सरकारी दफ्तरों में और अदालतों में भी प्रांतीय भाषायें तुरन्त जारी कर दी जाए। शिक्षा माध्यम परिवर्तन की सफलता की असली पूंजी यही है कि कालेजों में हम जो भाषायें चलाना चाहते हैं, उन भाषाओं को दफ्तरों और अदालतों में भी चला दें। भारत में अंग्रेजी चलाने का श्रेय मैकाले को दिया जाता है। किंतु वास्तव में यह श्रेय विलियम बैंटिंक को दिया जाना चाहिए, क्योंकि अंग्रेजी को नौकरी की भाषा बैटिंग ने बना दिया और जरूरतमंद लोग रोजी कमाने की आशा में अंग्रेजी सीखने लगे। जब तक दफ्तरों की भाषा नहीं बदलती, कालेजों में शिक्षा माध्यम के परिवर्तन का काम जोर नहीं पड़ेगा। असहोग के प्रारम्भ होने पर गाँधीजी और रविन्द्रनाथ ठाकुर के बीच अखबारों के जरिए थोड़ी बहस चली थी। उस समय रविन्द्रनाथ की दलीलों का खण्डन करते हुए गाँधीजी ने लिख़ा था अंग्रेजी आज इसलिए पढ़ी जा रही है कि उसका व्यवसायिक एवं तथाकथित राजनीतिक महत्व है। हमारे बच्चे अंग्रेजी यह सोचकर पढ़तें हैं कि अंग्रेजी पढ़े बिना उन्हें नौकरियां नहीं मिलेगी। लड़कियों को अंग्रेजी इसलिए पढ़ाई जाती है कि उसकी शादी में सहूलियत होगी। मैं ऐसी कितनी ही औंरतों के बारे में जानता हूं जो अंग्रेजी फकत इसलिए सीखाना चाहती थी कि अंग्रेजी के साथ वे अंग्रेजी में बातचीत कर सकें। मैं कितने ही ऐसे पतियों को भी जानता हूं, जिन्हें इस बात का मलाल है कि उनकी बिबियां उनके साथ और उसके दोस्तों के साथ अंग्रेजी में बात नहीं कर सकती। मुझे ऐसे परिवारों की जानकारी है, जहां अंग्रेजी मात्र भाषा बनाई जा रही है। ये सारी बातें मेरे नजर में गुलामी और घोर पतन के चिन्ह है। मैं इस बात को बर्दाश्त कर सकता कि देशी भाषाएँ इस तरह कुचल दी जाऐं, भूंखों मार डाली जाऐं।

मेरा ख्याल है, खुली हवा में मेरा विश्वास उतना ही पक्का है, जितना महाकवि का। मैं नहीं चाहता कि मेरे घर की दीवारें चारों ओर से घिरी हुई हों और उसकी खिड़कियाँ बन्द हों। मैं चाहता हूं कि सभी देशों की संस्कृतियां मेरे घर के इर्द–गिर्द पूरी आजादी से मंडराएं। लेकिन उनमें से किसी भी संस्कृति को मैं अपने गांव को डिगने नहीं दूंगा। मैं दूसरे लोगों के घरों में उचक्के, भिखमंगे या गुलाम की तरह जीने को तैयार नहीं हूं। झूठी इज्जत और झूठी शान के लिए हमारी बहनें अंग्रेजी पढ़ने की जहमत उठाएं, इसे मैं गवारा नहीं कर सकता। साहित्यिक रूचि रखने वाले युवक और युवतियां अंग्रेजी और दुनिया की दूसरी भाषाएँ खूब पढें, और जरूर पढ़ें। लेकिन, उनसे मैं आशा करूँगा कि वे अपने ज्ञान का प्रसाद भारत को और सारे संसार को उसी तरह प्रदान करेंगे, जैसे बसु, राय और स्वयं कवि रवीन्द्रनाथ ने प्रदान किया है। मगर मैं हरगिज यह नहीं चाहूंगा कि कोई भी हिदुस्तानी अपनी मातृभाषा को भूल जाए या उसकी उपेक्षा करें या उसे देखकर शर्माए अथवा यह महसूस करें कि अपनी मातृभाषा के जरिए वह ऊंचें–से ऊंचा चिंतन नहीं कर सकता है। कैदखाने का धर्म मेरा धर्म नहीं है। परमात्मा की सृष्टि में छोटे–से–छोटे जीवों के लिए भी स्थान है। मगर अहंकार तथा रंग, धर्म या जाति के अभियान के लिए उसमें कोई जगह नहीं है।

समय की दरकार दिमागी आलस

नीचे से लेकर ऊपर तक सारी शिक्षा का माध्यम बदलने के काम को गाँधीजी उतना ही महत्व देते थे, जितना स्वाधीनता के कार्य को। बल्कि इस काम को वह स्वराज्य का तीन–चौथाई काम समझते थे। स्वराज्य साध्य नहीं, साधन मात्र है। स्वराज्य की सार्थकता तभी है, जब वह जनता को उत्साहित करें, उसके भीतर छिपी शक्तियों को प्रकट करें और जनता के व्यक्तिगत का जो असली तेज हैं, उसे प्रस्फुटित कर दें। किंतु जो जनता अपनी भाषा में नहीं सोचती, न अपनी भाषा में शिक्षा और शासन के कार्य चलाती है, उस जनता का व्यक्तित्व कभी भी नहीं उभरेगा। यही कारण था कि गाँधीजी आरम्भ से ही चाहते थे कि भारत के प्रांतों का नव–संगठन भाषाओं के आधार पर कर दिया जाए, जिससे प्रत्येक प्रदेश में वहां की अपनी भाषा को फूलने–फलने का मौका मिले और जनता के व्यक्तित्व का सम्यक् विकास हो सके। भारत के स्वतन्त्र होते ही गाँधीजी ने यह इच्छा प्रकट की थी कि भाषावार प्रांतों की रचना अब शीघ्र हो जाए और प्रादेशिक भाषाएं शीघ्र–से शीघ्र शिक्षा और राजकाज की भाषाएं बना दी जाएं।

'निश्चय ही, प्रांतीय सरकारों के लिए यह बिलकुल आसान बात होनी चाहिए कि वे अपने यहां ऐसे कर्मचारी रखें, जो सारा काम प्रांतीय भाषाओं और अंतरप्रांतीय भाषा में कर सकें। यह जरूरी फेरफार करने में एक दिन खोना भी राष्ट्र को भारी नुकसान पहुंचाना है। सबसे पहले और जरूरी बात यह है कि बात अपनी उन समृद्ध प्रांतीय भाषाओं को पुर्नजीवन प्रदान करें, जो हिंदुस्तान को वरदान की तरह मिली हमारे स्कूलों और यहां तक कि हमारे सरकारी दफ्तरों में भी यह भाषा–संबंधी फेरफार करने में कुछ समय, शायद कुछ बरस चाहिए.... प्रांतीय सरकारें ऐसा कोई तरीका खोज सकती हैं, जिससे उन प्रांतों के लोगों को ऐसा अनुभव हो कि उन्हें अपने अधिकार की चीज मिल गई है।

स्वराज्य होते ही गांधीजी स्वराज्य को लेकर असंख्य जनता की ओर दौड़ना चाहते थे, जिससे भारत का स्वराज्य मुंट्ठी–भर अंग्रेजीदां लागों के कब्जों से निकलकर सचमुच जनता का स्वराज्य बन जाए। किन्तु उनके शिष्यों में यह साहस नहीं रहा कि गाँधीजी की इस अभिलाषा को पूर्ण करें। नतीजा यह है कि मातृभाषाओं के जरिये तैयार होने वाले युवकों को नौकरी मिलना कठिन हो गया है और केरल के जिन युवकों ने हिंदी में डिगरियां हासिल कीं वे बेकार हैं।

गाँधीजी का विश्वास था कि जब तक प्रांतों में प्रांतीय भाषाएं नहीं चलेंगी, केंद्र में केन्द्रीय भाषा के चलाने में कठिनाई रहेगी। लेकिन जब प्रांत अपनी भाषाओं का प्रयोग करने लगेंगे, सबको झक मारकर केंद्र के साथ हिंदी में व्यवहार करना पड़ेगा। जो सरकारी कर्मचारी हिंदी सीखने में ढिलाई दिखा रहे हैं, उनके प्रति गाँधीजी की सहानुभूति नहीं थी।

उन मुठठी–भर हिंदुस्तानियों के लिए राष्ट्र की संस्कृति को नुकसान नहीं पहुंचना चाहिए, जो इतने आलसी हैं, जिस भाषा को किसी वर्ग या पार्टी का दिल दुखाए बिना सारे हिदुस्तान में आसानी से अपनाया जा सकता है, उसे भी नहीं सीख सकते। भाषा का प्रश्न केवल भावात्मक प्रश्न नहीं है। उनका संबंध भारत की स्वाधीनता, भारत की एकता और भारत के व्यक्तित्व के विकास से हैं। 15 अगस्त 1947 ई. को जो स्वराज्य हमें मिला, वह केवल राजनीतिक स्वराज्य था। जब तक हम सांस्कृतिक रूप से भी स्वाधीन नहीं हो जाते, तक हमारे राजनीतिक स्वराज्य की कोई गारंटी नहीं है। इसलिए गांधीजी ने स्वराज्य–प्राप्ति के एक मास बाद लिखा था।

''मेरा कहना यह है कि जिस तरह हमारी आजादी को छीनने वाले अंग्रेजों की सियासी हुकूमत को हमने सफलतापूर्वक इस देश से निकाल दिया, उसी तरह हमारी संस्कृति को दबाने वाली अंग्रेजी भाषा को भी हमें यहां से निकाल देना चाहिए। हां, व्यापार और राजनीति की अंतर्राष्ट्रीय भाषा के नाते अंग्रेजी का अपना स्वाभाविक स्थान हमेशा कायम रहेगा।''

हम जो करते हैं

और हम जो कर सकते हैं,

इसके बीच का अंतर दुनिया की

ज्यादातर समस्याओं के

समाधान के लिए पर्याप्त होगा।

महात्मा गाँधी

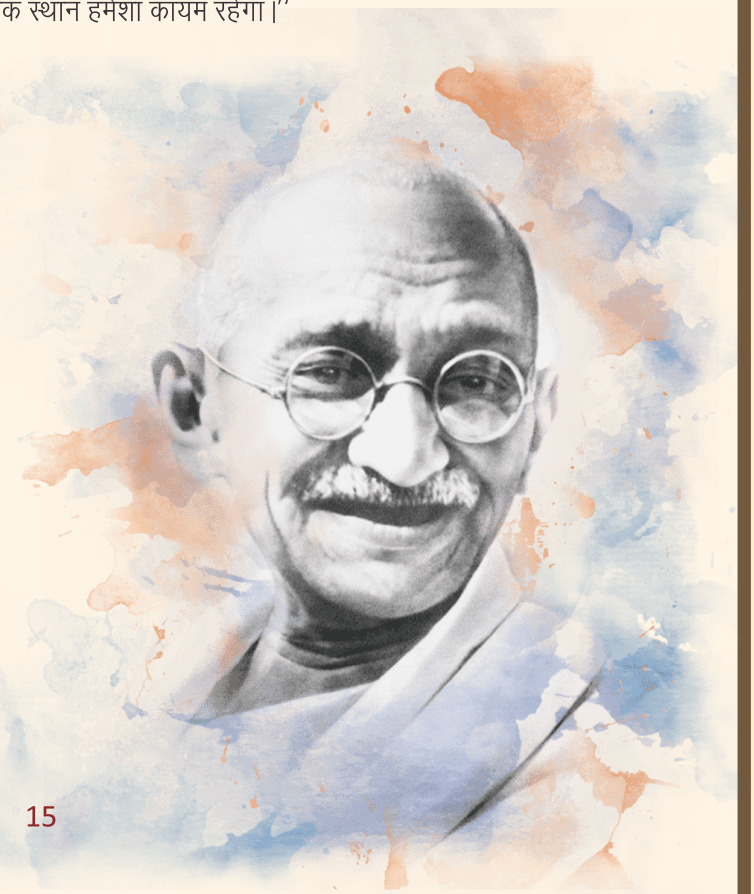

राष्ट्रीयता और अस्मिता कहाँ खो गई ?

शंकर दयाल सिंह

संविधान के अनुच्छेद 343(1) के अनुसार भारत संघ की राजभाषा देवनागरी लिपि में हिंदी है। यह संविधान का वाक्य है। लेकिन मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या सच में हिंदी आज भारत संघ की राजभाषा है?

यह प्रश्न इसलिए कि उसी अनुच्छेद में आगे, लिखा हुआ है कि सन् 1965 के बाद भी अंग्रेजी के उपयोग को चालू रखने के लिए संसद कानून बना सकती है।

अब आइए वस्तुस्थिति पर –14 सितम्बर 1949 को संविधान सभा ने हिंदी को भारत की राजभाषा बनाने का निर्णय लिया 26 जनवरी, 1950 से संविधान के तहत इसे लागू भी कर दिया गया। इसके पहले का भी हवाला मैं देना चाहता हूं। जब 19 अप्रेल 1947 को बाबा साहेब आंबेडकर ने यहां कहा था कि हिदुस्तानी को न केवल संघ की वरन् सभी इकाइयों की भाषा बना दिया जाना चाहिए। उनका कहना था।

यथास्थिति धारा 9 हिंदुस्तानी को संघ की राजभाषा घोषित करती है। समिति द्वारा गृहीत शब्दावली के विचार से यह स्पष्ट है कि हिंदुस्तानी राज्य की अर्थात संघ की भाषा होगी और साथ ही इकाइयों की भी। यदि प्रत्येक इकाई को स्वतंत्रता दी जाती है, जैसी कि अन्य धारा में दी गई है कि वह किसी भी भाषा को राजभाषा बनाए तो इससे न केवल भारत के लिए एक राष्ट्रभाषा का उद्देश्य पराभूत हो जायेगा, वरन् भाषाई विभेदता के कारण भारत का प्रशासन भी असम्भव हो जायेगा। अतः मेरा अभिमत है कि संघ के स्थान पर राज्य शब्द रख दिया जाए। हो सकता है कि इकाईयां हिंदुस्तानी को अपनी राजभाषा बनाने के लिए समय मांगे। इसके लिए उन्हें समय देने में कोई हानि नहीं है। किंतु इस विषय पर कोई संदेह नहीं हो सकता कि प्रारंभ से ही इकाइयों पर हिंदुस्तानी को ग्रहण करने की वैधानिक अनिवार्यता या बाध्यता होगी।

सन् 1931 को जनगणना के अनुसार देश की आबादी की 69 प्रतिशत आबादी हिंदी बोलती या समझती थी। इसलिए गाँधीजी का जोर था कि हिंदी और उर्दू के मेल से पनपी हिंदुस्तानी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो तथा आजाद भारत की राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी अथवा हिंदी ही होगी। सन् 1918 में जब गाँधीजी ने हिंदी साहित्य सम्मेलन, इंदौर–अधिवेशन की अध्यक्षता की थी। वहीं से इस बात की शुरूआत हो गई थी।

सन् 1936 में कांग्रेस ने गाँधीजी की प्रेरणा से यह प्रस्ताव पारित किया था कि कांग्रेस की अधिवेशन की कार्यवाही हिंदुस्तानी अथवा हिंदी में ही संपन्न हो। निश्चय ही आजादी के पूर्व राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी अथवा हिंदी ही होगी।

अब सीधे आता हूं सन् 1963 के राजभाषा अधिनियम पर। अधिनियम के पारित होते ही तमिलनाडु में तूफान उठ खड़ा हुआ और तत्कालीन प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने संसद में यह आश्वासन दे दिया कि जब तक देश के सभी राज्य स्वीकार नहीं कर लेते, तब तक हिंदी और अंग्रेजी के साथ–साथ काम होता रहेगा। सन् 1965 और 1967 में, 1963 के राजभाषा अधिनियम में संशोधन किया गया। मेरा मानना है कि यहीं व्यावहारिक रूप से हिंदी रूक गई। हांलाकि इस अधिनियम की धारा 3–3 के अनुसार सभी सरकारी कागजात संसद में हिंदी और अंग्रेजी भाषा में प्रस्तुत किये जाते हैं।

अब सवाल यह है कि इसे हम गाँधीजी के उत्तराधिकारियों की शिथिलता कहें, दुविधा कहें या बेइमानी?

आजादी मिलने के बाद यह नहीं कहा गया कि अभी राष्ट्रध्वज तैयार नहीं है, इसलिए यूनियन जेक कुछ दिन तक फहराता रहे या अपने राष्ट्रगान का स्वर अभी परिचित नहीं है इसलिए 'लाँग लिव द् किंग' ही कुछ दिनों तक चलना चाहिए। जब ऐसी बातें राष्ट्रीय–ध्वज और राष्ट्रगान के संबंध में न हुई तो फिर राष्ट्रभाषा के संबंध में ही यह टरकाऊ नीति क्यों लागू की गई? इसका साफ मतलब यह निकलता है कि अपने संविधान निर्माताओं और उसे लागू करने वालों की नियत हिंदी के संबंध में साफ नहीं था।

देश के एक हिस्से में थोड़ा–सा उपद्रव हो जाने से ही हिंदी को रोक देना कहां तक उचित कहा जाएगा? आसाम, पंजाब और कश्मीर के अनेक मुद्दों को लेकर भयंकर स्थितियां उत्पन्न हुई और विघटनकारी तत्वों ने अपना सिर उठाया, लेकिन सरकार ने राष्ट्र की एकता और अविच्छिन्नता के नाम पर उनसे कहां समझौता किया? फिर हिंदी के संबंध में इस आश्वासन और समझौते का औचित्य क्या है?

कोई भी प्रधानमंत्री संविधान से बड़ा नहीं होता है, इसके तहत ही होता है। जब संविधान में हिंदी को राजभाषा का दर्जा दे दिया गया, तब फिर इस आश्वासन की जरूरत क्या हुई कि जब तक देश के सभी राज्य हिंदी को न मानें, तब तक वह राजभाषा नहीं होगी। क्या

हमने इस आश्वासन के द्वारा अपने संविधान की खिल्ली नहीं उड़ाई? काम होते रहेंगे। एक बार जब कोई किसी के घर में किराएदार के रूप में प्रवेश कर जाता है, तो उसे निकालना मुश्किल होता है। फिर यहां तो अंग्रेजी को 15 वर्षों तक हमने स्वयं ही बैठा दिया तो उसको हटाना क्या इतना आसान है?

सन् 1963 में राजभाषा अधिनियम पारित हुआ, लेकिन 13 वर्षों तक नियम नहीं बने। यह हास्यास्पद से अधिक दुखद और सुखद से बढ़कर शर्मनाक बात है कि राजभाषा हिंदी के प्रति हमने कभी न तो मुस्तैदी बरती और न ईमानदारी। सन् 1976 में राजभाषा नियम बने। इस भांति राजसिंहासन पर बैठने का जिस भाषा को सन् 1949–50 में संवैधानिक अधिकार मिलाा, वह फुटपाथ पर खड़ी रही।

अब हम इस बात पर आएं, जहां इसका उल्लेख है कि सरकारी कर्मचारी अपना काम हिंदी में करने को स्वतंत्र है तथा उन्हें स्वयं अपना नोट आदि का अंग्रेजी में अनुवाद आदि नहीं देना पड़ेगा। लेकिन वस्तुस्थिति क्या है? राजभाषा के रूप में हिंदी की स्थिति या तो अनुवाद की है या रस्मअदायगी की। केंद्र सरकार के 10 प्रतिशत कार्य भी मूल रूप से हिंदी में नहीं होते और जो 90 प्रतिशत कार्य अंग्रेजी में होते हैं, उनका जो हिंदी अनुवाद उपलब्ध कराया जाता है, वह कृत्रिम और शुष्क रहता है। आंखें उन्हें ठीक से न तो पढ़ पाती हैं और न दिल उन्हें ग्रहण कर पाता है। इन प्रश्नों से टकराते हुए कुछ अन्य मौलिक प्रश्न हमारे सामने हैं, जिन पर शायद उचित ढंग से कभी विचार नहीं हुआ। केन्द्र सरकार में अथवा राज्य सरकारों में शायद ही कोई ऐसा पद हो, जिसमें बिना अंग्रेजी जाने किसी को सेवा का अवसर मिले, वहां हजारों ऐसे वरिष्ठ पदाधिकारी हमें मिलेंगे, जो हिंदी नहीं जानते अथवा उसकी उपेक्षा करते हैं, फिर भी ऊँची कुर्सियों पर बैठे हुए हैं। यह एक ओर जहां राजभाषा अधिनियम, 1963 का खुल्लम–खुल्ला उल्लघंन है, वही दूसरी ओर धारा 3–3, जिसके अंतर्गत हिंदी और अंग्रेजी दोनों का ज्ञान आवश्यक है, उसकी भी फजीहत हो रही है। निश्चित रूप से भारत सरकार को संविधान के उन मूल संकल्पों का आदर और पालन करना चाहिए, जिसके अनुसार हिंदी और अंग्रेजी दोनों का ज्ञान सरकार के हर अधिकारी और कर्मचारी के लिए आवश्यक है। एक ओर जहां यह संवैधानिक आवश्यकता है, वहां दूसरी ओर कानूनी अनिवार्यता भी। इसका सख्ती से पालन होना चाहिए।

संसदीय राजभाषा समिति का गठन सन् 1976 में किया गया, जिसके जिम्में हिंदी के प्रगामी प्रयोग हेतु निरीक्षण और पुर्नपरीक्षण का कार्यभार सौंपा गया। उसमें 20 लोकसभा के और 10 राज्यसभा के, कुल मिलाकर 30 सदस्य हैं। केन्द्रीय गृहमंत्री इसके अध्यक्ष होते हैं। इस समिति ने विगत 15–16 वर्षों की अवधि में पूरे देश का दौरा करके और 5 हजार से अधिक निरीक्षण, साक्ष्य और विचार–विमर्श करने के बाद राष्ट्रपति जी को 5 प्रतिवेदन पेश किए। इनमें से 4 पर राष्ट्रपति जी के स्पष्ट आदेश जारी किए जा चुके हैं, जिनमें पत्राचार टंकरण यंत्र, प्रशिक्षण तथा मूल टिप्पणी के संबंध में राष्ट्रपति का स्पष्ट आदेश है। मेरा संबंध इस समिति से सन् 1976 अथवा इसके स्थापना काल से ही रहा है और विगत 3 महीनों से मुझे इसका उपाध्यक्ष मनोनीत किया है। मैं स्वयं अपने अनुभवों और निरीक्षणों से अच्छी तरह जानता हूं कि भारत सरकार के अधिकतर कार्यालयों में हिंदी की स्थिति हास्यास्पद हैं, जहां खानापूर्ति कार्य भी नहीं हो पाता। जबकि राष्ट्रपति का आदेश है कि हिंदी भाषा–भाषी क्षेत्रों में, जिन्हें 'क' क्षेत्र कहते हैं, जहां 90 प्रतिशत हिंदी में कार्य होने चाहिए।

ऐसा क्यों हो रहा है? इसलिए हो रहा है, क्योंकि यहां किसी प्रकार के दंड की व्यवस्था नहीं है। यदि संविधान के अनुच्छेदों, राजभाषा अधिनियम, राजभाषा नियम और राष्ट्रपति के आदेश के उल्लंघन करने वालों को दंडित करने का प्रावधान हो जाए तो हिंदी की गाड़ी कल से द्रुतगति से चलने लगे।

प्रायः एक बात सुनने को मिलती है कि हिंदी किसी पर लादी न जाए अथवा हिंदी के लिए यदि जोर–जबर्दस्ती हुई तो इसके दुष्परिणाम होंगे या देश टूट जायेगा। यह और भी हास्यास्पद दलील है। कारण हिंदी किसी पर लादी नहीं जा रही है, वरन् लोग स्वेच्छा से इसे अपनाते हैं, क्योंकि हिंदी के माध्यम से हजारों लोगों को राजी–रोटी मिलती है। जिस भांति किसी जमाने में उर्दू, फारसी अथवा अंग्रेजी जानने वाला को नौकरियों में प्राथमिकता मिलती थी, आज यदि उत्तर भारत के लोगों को तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मलयालम पढ़ने से नौकरी मिलने लगे तो हिंदी क्षेत्रों में इसकी भरमार हो जाएगी।

मेरा स्वयं का मानना है कि हिंदी कभी लादी नहीं जानी चाहिए। इसे स्वेच्छा से जो न पढ़ना चाहें, उसे सरकार विवश न करें। इस भांति हिंदी के प्रचार–प्रसार और शिक्षण में जो करोड़ों रूपये खर्च किए जा रहे हैं, वे भी बचाए जा सकते हैं, तथा अहिंदी भाषी लोगों में जिनमें मुख्य रूप से तमिलनाडु का नाम सामने आता है, उनके मन से यह भावना हटा देनी चाहिए कि हिंदी जबर्दस्ती लादी जा रही है। आजादी के पहले हिंदी, जो स्वतंत्रता संग्राम की वाणी थी तथा उसके बहुत पहले जिसमें संतों की वाणियां गूंजती थी, उसने पिछले दिनों बहुत गालियां सुनी और सहि। इसकी भी एक हद है। यह विनम्र निवेदन है कि उससे हिंदी को बचाए।

अगर सच्चाई उजागर हो तो जो लोग अंग्रेजी की वकालत करते हैं–एक ओर जहां वे गुलाम मानसिकता के शिकार हैं, वहीं दूसरी ओर राष्ट्रीयता को पनपने से रोक रहे हैं। जब तक अंग्रेजी का वर्चस्व रहेगा, तब तक भारतीय भाषाएं दबी और कुचली रहेगी। काई भी देश–विदेशी भाषा के बल पर कभी ऊँचा नहीं उठा। हमारे सामने अनेक उदाहरण हैं–जापान, जर्मनी, दक्षिण कोरिया, चीन जैसे देश गुलामी की बेड़ियों में जकड़ें हुए जिन देशों ने आजादी के बाद भी अंग्रेजी के वर्चस्व को स्वीकार किया, वे अविकसित या विकासशील ही बने हुए हैं–विकसित कोई नहीं हुआ। सुप्रसिद्ध अर्थशास्त्री गुंडार मिंडल ने 'ऐशियन ड्रामा' में लिखा है कि जब तक भारतीय संसद में अंग्रेजी का व्यवहार होता रहेगा, तब तक वह देश अपने को आजाद नहीं कह सकता। इसके बाद भी कुछ कहने की जरूरत है। यदि हां तो एक बार फिर आपको गाँधी के पास ले चलता हूं।

सन् 1915 में गाँधी दक्षिण अफ्रिका से भारत आए। 15,16,17 तीन वर्षों तक उन्होंने देश के एक कोने से दूसरे कोने तक रात–दिन भ्रमण किया। सत्य का प्रयोग उन्होंने दक्षिण अफ्रिका में किया था और उसका आग्रह यानी सत्याग्रह की शुरूआत उन्होंने सन् 1917 में चम्पारन में की। 18.07.1917 को उन्होंने चम्पारन की एक सभा में कहा था–' जो स्थान इस समय अनुचित ढंग से अंग्रेजी भोग रही है। वह स्थान हिंदी को मिलना चाहिए। शिक्षित वर्ग की एक भाषा अवश्य होनी चाहिए और वह हो सकती है–हिंदी, जिसके द्वारा करोड़ों व्यक्तियों को आसानी से काम मिल सकता है। इसलिए उसे उचित स्थान मिलने में जितनी देरी हो रही है, उतना ही देश का नुकसान हो रहा है।'

उसके भी पहले सन् 1909 में उन्होंने हिन्द स्वराज्य में लिखा था–हर एक पढ़े–लिखे हिदुस्तानी को अपनी भाषा का, हिंदू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, फारसी को पर्शियन का और सबको हिंदी का ज्ञान होना चाहिए। कुछ हिंदुओं को अरबी और कुछ मुसलमानों को और पारसियों को संस्कृत सीखना चाहिए। उत्तर और पश्चिम में रहने वाले हिंदुस्तानी को तमिल सीखनी चाहिए। सारे हिदुस्तानी के लिए तो हिंदी ही होनी चाहिए।

आजादी के बाद 21 सितम्बर, 1947 के दिन प्रार्थना सभा में व्यक्त किया गया उनका विचार हमें झकझोर देता है–जिस तरह हमारी आजादी को जबर्दस्ती छीनने वाले अंग्रेजों की सियासी हुकुमत को हमने सफलतापूर्वक इस देश से निकाल दिया, उसी तरह हमारी संस्कृति को दबाने वाली अंग्रेजी जुबान को भी हमें यहां से निकाल बाहर करना चाहिए। हाँ व्यापार और राजनीति में अंतर्राष्ट्रीय भाषा के नाते अंग्रेजी का अपना स्वाभाविक स्थान हमेशा कायम रहेगा।

इस संदर्भ में विचार करते–करते धीरज धरते–धरते तथा औपचारिकताओं का निर्वाह करते–करते हमने 48 वर्ष बिता दिए। हिंदी जहां 1947–48, 50–51 में थी, उससे आज बहुत दूर चली गई, लगता है, मानो ऐसी स्थिति आ गई है कि जैसे विदेशी कर्जों के बिना हमारा काम नहीं चलता, वैसे ही विदेशी भाषा के बिना हमारा सम्मान नहीं रहेगा, इस संबंध में मैं अंतिम वाक्य एक विदेशी पादरी फादर कामिल बुल्के को उधृत करना चाहता हूं, जिन्होंने अपनी पूरी जिंदगी हिंदी की सेवा और मानस के शोध में लगा दी थी। उनका कहना था–सन् 1918 ई. में भारती स्वाभिमान की प्रतिमूर्ति महात्मा गांधी, इसी शर्त पर वाइसराय से मिलने के लिए राजी हुए कि वह उनसे हिंदी में बातचीत करेंगे। भारत की भावी राजभाषा के विषय में उन्होंने सुस्पष्ट शब्दों में कहा कि यदि स्वराज्य भारत के जनसाधारण के लिए होगा तो हिंदी ही संपर्क भाषा हो सकेगी। उन्होंने यह भी लिखा है कि देश में जो एकता अंग्रेजी भाषा द्वारा दिखाई देती है, वह उस वक्त तक ही चल सकती है, जब तक थोड़े से लोग शिक्षा पाते हैं। जब देश स्वतंत्र होगा और हर बच्चा शिक्षा पाएगा तो वह पढ़ाई विदेशी भाषा में नहीं बल्कि देश की विभिन्न भाषाओं में होगी। उन अलग–अलग भाषाओं को बोलने वालों को मिलाने के लिए उन्होंने हिंदी को चुना। देश के कुछ प्रदेशों में दो प्रतिशत लोग कुछ अंग्रजी जानते हैं, अतः अंग्रेंजी के ज्ञान के आधार पर देश की भाषात्मक एकता संपूर्ण ही रहेगी। अंग्रेजी भाषा प्रजातंत्रवादी भारत की राजभाषा रहने योग्य नहीं हैं।

यदि अपनी इन बातों तथा उपर्युक्त उद्धरणों के द्वारा मैंने आपके अंदर कोई झंझावत पैदा न किया तो मुझे यही लगेगा कि देश की चेतना लुप्त हो गई। शिक्षा संस्कृति और संस्कार तीनों को हमने कहीं गिरवी रख दिया है तथा अंग्रेजी के व्यामोह में हमने इस देश की अस्मिता को बेच दिया है।

हिंदी का महत्व केवल राजभाषा और राष्ट्रभाषा के रूप में नहीं बल्कि जनभाषा के रूप में सर्वोपरि हैं, क्योंकि वह साक्षरों की ही नहीं, निरक्षरों की भी संपर्क भाषा है।

गुलाब को उपदेश देने की आवश्यकता नहीं होती।
वह तो केवल अपनी खुशबू बिखेरता है। उसकी खुशबू ही उसका संदेश है।
महात्मा गाँधी

गाँधी और हिंदी-भारत और राष्ट्रसंघ की भाषा

डॉ. रत्नाकर पाण्डेय

विख्यात कवि सोहन लाल द्विवेदी की एक कविता मैंने प्राइमरी स्कूल में पढ़ी थी, युबावतान गाँधी :–

चल पड़े जिधर दो डगमग में,

चल पड़े कोटि पग उसी ओर।

पड़ गई जिधर भी एक दृष्टि,

गड़ गये कोटि दृग उसी ओर।

जिसके सिर पर निज धरा हाथ,

उसके सिर रक्षक कोटि हाथ।

जिस पर निज मस्तक झुका दिया,

झुक गये उस पर कोटि माथ।

कविता बड़ी लंबी है। गाँधीजी के इतने रूप हैं कि उनकी व्याख्या करते–करते और उन पर विचार चिंतन करते–करते आदमी की बुद्धि, विवेक, भावना, चिंतन सभी विस्मित हो जाते हैं।

गाँधीजी का जन्म गुजरात के काठियावाड़ के पोरबंदर में हुआ। सम्पन्न परिवार था। लन्दन से बैरिस्टर की शिक्षा ग्रहण करके आये। कस्तूरबा गांधी से शादी हो चुकी थी और बैरिस्ट्री की प्रैक्टिस करने के लिए उन्हें गुजरात के लोगों ने दक्षिण अफ्रीका आमंत्रित किया। वहां उन्हें गोरे–काले के रंगभेद के कारण प्रथम श्रेणी के रेलवे कम्पार्टमेंट से खींच कर प्लेटफॉर्म पर उतार दिया गया। सामान लावारिस घोषित कर दिया गया, वही आज राष्ट्रीय एकता की आत्म अभिव्यक्ति का माध्यम भारत की ही नहीं दुनिया की सर्वाधिक लोकप्रिय भाषा हिंदी का 9वां विश्व हिंदी सम्मेलन जोहान्सबर्ग में आयोजित हो रहा है। वहां की क्रूरता से दक्षिण अफ्रीका में मजदूरों पर, गिरमिटियों पर व्यवसासियों पर और गोरों द्वारा कालों पर जो खेतों में मजदूरी में और निर्जीव जड़ से भी जो घृणास्पद अमानवीय व्यवहार नहीं किया जा सकता है, उस असहनीय, अमानवीय रंगभेद की नीति ने गाँधी को अपमान सहन करने की जो अद्‌भुत शक्ति दी, उसी आत्मशक्ति के परिणाम स्वरूव वे भारत में सन् 1920 से प्रारंभ कर अपने आंदोलनों के माध्यम से भारत को सन् 1947 ई. में स्वतंत्रता दिलाने में ही कामयाब नहीं हुए, बल्कि भारत की स्वतंत्रता के नायक गाँधी की प्रेरणा से दुनिया के समस्त अधिनायकवादी शक्तियों के क्रूर, जानलेवा, औपनिवेशिक कांटों के जाल में फंसे हुए अन्य अनेक देश भी मुक्त हुए। उनके द्वारा स्वतंत्र किया गया दक्षिण अफ्रीका भारत के बाद दूसरा श्रेष्ठतम राष्ट्र है।

भारत में ही नहीं दक्षिण अफ्रीका में भी गाँधीजी को, अपने परिवार, संतानों और वहां बसने वाले भारतीयों को ही नहीं, बल्कि वहां के दबे–कुचले लोगों को आत्मशक्ति देने वाला सर्वमान्य प्रेरणा पुरूष जो ईश्वरीय शक्तियों से संपन्न बनने का मौका मिला था। दक्षिण अफ्रिका के स्वतंत्रता आंदोलन के जनक नेल्सन मंडेला ने लिखा है कि महात्मा गाँधी उपनिवेशवाद को उखाड़ फेंकने वाले क्रांतिकारी थे। दक्षिण अफ्रिका के स्वतंत्रता आंदोलन को मूल रूप देने में मैंने उनसे ही प्रेरणा पाई है। गाँधीजी दक्षिण अफ्रिका के भी पुत्र थे। भारत ने दक्षिण अफ्रीका को जो गाँधी सौंपा था वह एक बैरिस्टर था, जबकि दक्षिण अफ्रीका ने उस गाँधी को महात्मा बनाकर भारत को लौटाया।

गाँधीजी भारत में पाश्चात्य शिक्षा प्रणाली के कटु आलोचक थे और मानते थे कि हमारी शिक्षा प्रणाली पश्चिमी विश्वविद्यलयों की नकल है। देसी संस्कृति की पूरी तरह अवहेलना और विदेशी सभ्यता पर टिकी यह शिक्षा प्रणाली न भारतीय दृश्य से संबंधित थी, न हस्त निर्माण एवं स्वदेशी के क्षेत्र पर उसका कोई ध्यान था। वह शिक्षा केवल मनुष्य के दिमाग तक सीमित थी। गाँधीजी मानते थे कि शिक्षा का असली मायने है समाज और व्यक्ति का आत्म उत्थान और सच्ची शिक्षा मनुष्य के मन और आत्मा का परिपूर्ण विकास का माध्यम हैं। जो शिक्षा चरित्र निर्माण नहीं कर सकती, वह जनसाधारण के सांस्कृतिक जागरण की उपेक्षा करती है। शिक्षा छात्रों को आर्थिक आत्मनिर्भरता दें तभी उसकी सार्थकता है। जो शिक्षा पद्धति देश की विभिन्न प्रांतीय भाषाओं में न दी जाएं और देसी भाषाओं में न दी जाय, वह निरर्थक

है। जनता और विभिन्न वर्गों की बौद्धिक सांस्कृतिक खाई को जो शिक्षा पाट न सकें, वह शिक्षा नकली है। मौलिक विचारधारा उत्पन्न करने के लिए स्वराष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का विकास करना चाहिए। विदेशी भाषा की कृतियों का उच्च कोटि के विद्वान पुरूष विभिन्न भारतीय भाषाओं में अनुवाद कर अपने ज्ञान का बीजारोपण कर सकते हैं।

गाँधीजी के विचारों में हिंदी के प्रति अदम्य उत्कंठा थी और दक्षिण अफ्रीका में भी गाँधीजी प्रवासी भारतवासियों के बच्चों को ऐसे विद्यालयों का स्वसंचालन ही नहीं करते बल्कि औरों को भी प्रेरित कर ऐसी शिक्षा दिलवाते थे, जिससे भारत की मातृभाषाओं के माध्यम से हिंदी को आगे बढ़ाया जा सके। गाँधीजी ने हिंदी को मन, वचन, कर्म से राष्ट्रभाषा के रूप में देश के सामने प्रस्तुत किया। वास्तव में अहिंदी भाषा–भाषी समाज सुधारकों ने अपने विवेक और भावना से अध्ययन कर हिंदी को सारे देश के लिए सर्वमान्य भाषा के रूप में महिमामडित किया। सन् 1909 ई. में अपनी कृति 'हिन्द स्वराज्य' में गाँधीजी ने कहा था कि हर एक पढ़े–लिखे हिंदुस्तानी को अपनी भाषा का हिंदु को संस्कृत का मुसलमानों को अरबी का, पारसीयों को परश्यिन का और सारे भारतवासियों को हिंदी का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। सारे हिंदुस्तान के लिए एक भाषा हिंदी होनी चाहिए। हमें अपने आपस के व्यवहार में अंग्रेजी को निकाल बाहर करने की आवश्यकता है।

सन् 1918 ई. में गाँधीजी ने हिंदी साहित्य सम्मेलन के इन्दौर अधिवेशन में अध्यक्ष पद से कहा था, : मैं कई बार व्याख्या कर चुका हूं कि हिंदी वह भाषा है जिसे उत्तर में हिंदू व मुसलमान बोलते हैं और जो नागरी अथवा फारसी लिपि में लिखी जाती है। जो हिन्दु–उर्दू को लेकर अंग्रेज साम्राज्यवादीयों ने विभाजन की कूटनीतिक चाल चली, उसकी रचना कलकत्ता के फोर्ट विलियम कॉलेज में की गई थी। हिंदु और मुसलमान के जातिभेद या धर्मभेद पर ही हिंदी आधारित नहीं थी। फोर्ट विलियम कालेज से संस्कृत शब्दों को अलग और अरबी, फारसी शब्दों की अलग शैली बनाने का कुचक्र रचा गया। हिंदी और उर्दू का व्याकरण एक था, परन्तु लिपि का भेद बनाकर हिंदी और उर्दू को अलग–अलग करने की विनाशकारी कुनीति रची गई। लेकिन उर्दू हिंदी की शैली बनकर जितनी विश्वविख्यात और लोकप्रिय हुई है, उतनी फारसी लिपि के कारण मान्यता नहीं मिली। गाँधीजी दो–दो बार हिंदी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष रहे और अंजूमन–तरक्की–ए–उर्दू की कभी शदारत नहीं की। गाँधीजी की स्पष्ट भाषा नीति थी, उसी का यह परिणाम था कि स्वतंत्र भारत में नागरी लिपि में लिखित हिंदी को संघ की राष्ट्रभाषा की मान्यता दी गई। अरबी, फारसी, संस्कृत भाषा के मूल शब्दों का धड़ल्ले में हिंदी में प्रयोग करने का कोई सिद्धांत नही बना। भारत में अंग्रेजी को संविधान से हटाने की व्यवस्था की गई थी, परंतु आज भी अंग्रेजी की डिग्री ही नौकरी पाने की कूंजी है। हमारी शिक्षा नीति भ्रामक खामियों से भरी हुई है। जब तक शिक्षा मंत्रालय द्वारा त्रिभाषा सूत्र में अंग्रेजी के स्थान पर हिंदी की मान्यता संवैधानिक और संसदीय प्रणाली से लागू नहीं की जाएगी, तब तक हिंदी प्रांतों के साथ ही अंग्रेजी पूरे देश में शिक्षा का माध्यम बने रहेंगी। और भारतीय भाषाओं को तथा राष्ट्रभाषा हिंदी को अपना वास्तविक स्थान नहीं मिल पाएगा। इसलिए गाँधीजी ने भारत के स्वतंत्र होते ही 21 सितम्बर 1947 का 'हरिजन' में लिखा था कि अंग्रेजी को शासन से हटाकर राज्यों में राष्ट्रभाषा हिंदी और भारतीय भाषाओं को कार्यान्वित करने के लिए ऐसे कर्मचारी ही नियुक्त किए जाएं जो प्रांतीय भाषाओं और राष्ट्रभाषा हिंदी के जानकार हों। इसे कार्यान्वित करने में जितना विलम्ब होगा, उसी अनुपात से राष्ट्र की सांस्कृतिक क्षति होगी। प्रांतीय भाषाओं को समृद्ध और पुनर्जीवित करना होगा। यह कहना कि कचहरियों, स्कूलों और सरकारी कार्यालयों में यह परिवर्तन लाने में समय लगेगा सही नहीं है। सरकारी विभागों में प्रांतीय भाषाओं को चलाना तुरंत आवश्यक है। अंतरप्रांतीय भाषाएं हिंदी के बिना भारत की भाषा नहीं हो सकती है। मैं कहता हूं कि सांस्कृतिक वंचक के रूप में अंग्रेजी को हमें उसी तरह निकाल बाहर करना है, जिस तरह हमने अंग्रेजों के राजनीतिक शासन को सफलतापूर्वक उखाड़ फेंका है। हम अंग्रेजी के गुलाम बने हुए हैं। अंग्रेजी के गुलाम नेताओं को पहले आजाद करना ही पड़ेगा, उसके बाद ही अंग्रेजी की गुलामी से भारत का उद्धार हो सकता है। गाँधीजी ने लिखा था कि यदि हम अपने देश के बच्चों को भारतीय भाषाओं के माध्यम से सब विषयों की उच्च से उच्च शिक्षा नहीं दें सके और हिंदी को राष्ट्रभाषा नहीं बना सके तो देश की स्वाधीनता निरर्थक हो जाएगी।

गाँधीजी के 18 रचनात्मक कार्यों में हिंदी का प्रचार भी एक आवश्यक काम था। वह मानते थे कि बिना राष्ट्रभाषा के भारत की स्वतंत्रता किसी काम की नहीं है। भाषा के संबंध में गुलामी तो ज्यों की त्यों रही है। अतः मैं भारत को स्वाधीन नहीं कहता हूं। जब तक भारत की राष्ट्रभाषा अंग्रेजी बनी रहेगी, तब तक भारत गुलाम है। स्वाधीनता मिलने से पूर्व तक मेरी कल्पना थी कि राष्ट्रभाषा हिंदी राष्ट्र की संपत्ति होगी और इसी में राष्ट्र का कार्य होगा। गाँधीजी ने कहा था कि यदि मैं तानाशाह होता तो विदेशी भाषा में शिक्षा बंद कर देता। सारे अध्यापकों को स्वदेशी भाषाएं और राष्ट्रभाषा हिंदी अपनाने को मजबूर कर देता। जो इसमें आनाकानी करते, उन्हें बर्खास्त कर देता। मैं पाठ्यपुस्तकों को तैयार करने का इंतजार नहीं करता। गाँधीजी ने हिंदी प्रचार के लिए अपने छोटे बेटे देवदास गाँधी को भी मद्रास भेजा था

और कहा था कि सर्व देशों में सर्व भाषाओं में हिंदी के द्वारा सारा काम चल जाता है। और सब भाषाओं का उपयोग जहां की भाषा हो, उसी प्रांतीय भाषा में अधिक काम हो सकता है। संस्कृत भाषा में जीवन शक्ति है, लेकिन देशव्यापी तो हिंदी ही हो सकती है। इसमें कोई मतभेद हो ही नहीं सकता।

वर्धा की राष्ट्रभाषा प्रचार समिति हो या मद्रास की दक्षिण भारत हिंदी प्रचार सभा हो, गाँधीजी ने गैर हिंदी भाषा–भाषी प्रांतों में हिंदी संस्थाओं का जाल बिछा दिया और उसके माध्यम से हिंदी की शिक्षा व्यवस्था का जो लोकव्यापी आंदोलन चलाया, उसका परिणाम था कि सारे देश में हिंदी राष्ट्रभाषा के रूप में सर्वमान्य हुई।

सन् 1916 ई. में राष्ट्रीय कांग्रेस में पहली बार गांधीजी सम्मिलित हुए थे। उस समय तक कांग्रेस अधिवेशनों की सारी कार्यवाही और भाषण अंग्रेजी में बोलने के दुराग्रह के बावजूद भी अपना भाषण हिंदी में दिया था। इसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा।

गांधीजी मानते थे कि :–

वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाणे रे,

पर दुःखे उपकार करे अति मन अभिमान न माने रे।

सारी दुनिया मानवता या वैष्णवता में विश्वास करती है। जो दूसरे का दर्द समझता है और दूसरे पर उपकार करता है, जो इस कार्य के लिए मन में घमंड नहीं लाता है, उसी को सच्चा मनुष्य कहा जाता है। नरसी मेहता का यह भजन गांधीजी का सबसे बड़ा मंत्र था। गांधीजी रामराज्य लाना चाहते थे और रामराज्य की प्रेरणा उन्हें तुलसीदास से मिली थी। दैहिक, दैविक, भौतिक ताप से रामराज्य में कोई दुःखी नहीं था। सारे विश्व में रामराज्य आये और तूलसीदास के रामचरितमानस के रामराज्य की परिकल्पना में स्वतंत्र भारत ही नहीं सारे विश्व में व्याप्ति हो, इसके लिए हिंदी और भारतीय भाषाओं से बढ़कर दूसरा अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं हो सकता। गांधीजी ने रामराज्य की कल्पना रामचरितमानस से ली थी। तुलसीदास की वह पंक्तियां मैं उद्धृत कर रहा हूँ :–

दैहिक दैविक भौतिक तापा, रामराज्य नहि काहुहि व्यापा।

सव नर करहिं परसर प्रीति, चलहिं स्वधर्म निरत श्रुति नीति।

चरिंउ चरन धर्म जग माहीं, पूरि रहा सपनेहुं अध नाही।

राम भगति रत नर अरू नारी, सकल परम गति के अधिकारी।

अल्पमृत्यु नहिं कवनिउ पीरा, सब सुंदर सब बिरूज सरीरा।

नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना, नहि कोउ अध न लच्छन हीना।

सब निर्दम धर्मरत पुनी, नर अरू नारि चतुर सब गुनी।

सब गुनग्य पंडित सब ज्ञानी, सब कृतग्य नहि कपट सयानी।

मुझे विश्वास है कि भारत में नहीं पूरी दुनिया में रामराज्य लाने के लिए गांधीजी की इस परिकल्पना को साकार करने के लिए मानवता स्वयं शक्तिदात्री, प्रेरणादात्री और कर्मठता की मशाल बनकर हिंदी भाषा के माध्यम से विश्व को मानवीय सद्वृतियों से रामराज्य की तरह संपन्न करेगी।

प्रतिबंधित **प्लास्टिक की थैलियाँ (हैंडल सहित/ हैंडल रहित)**

कृपया जूट या कपड़े की थैलियों का ही प्रयोग करें

प्लास्टिक की थैली बिना बुनाई किया बैग

प्लास्टिक की थैलियाँ या बिना -बुना शॉपिंग बैग

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति, भिलाई दुर्ग

राष्ट्रभाषा और गाँधी

उदय प्रताप सिंह

महात्मा गाँधीजी दूरदर्शी राजनीतिज्ञ और युगदृष्टा थे। वे अपनी कोई राय बनाने से पहले चिंतन और मनन करते थे। उनकी सबसे बड़ी खूबी यह थी कि यदि उन्हें स्वयं यह लगता था कि हमारी कोई बात आगे चलकर समाज के लिए हानिकारक हो सकती है तो वे उसमें तुरंत संशोधन करते थे। उनके लिये आजादी मात्र साधन थी साध्य नहीं। साध्य उनके लिए था सामाजिक व्यवस्था में क्रांतिकारी परिवर्तन लाना। और वे आजादी इसलिए चाहते थे जिससे समाज के हर क्षेत्र में वे विसंगतियां, विद्रुप्ता और विषमताएं दूर कर दी जाएं, जिसके कारण आजादी और विकास के जो परिणाम हैं, वे हर व्यक्ति तक पहुंच सकें। इस क्रम में उनकी मान्यता थी कि भाषा एक महत्वपूर्ण अस्त्र का काम कर सकती है। वे समस्त भारतीय भाषाओं को सम्मान देते थे, लेकिन अंग्रेजी और हिंदी के संबंध में उनकी स्पष्ट दो टूक राय थी। उनकी पक्की राय थी कि अंग्रेजी हिंदुस्तान में रहे, लेकिन अंग्रेजी को प्रतिष्ठा से, राज–काज से, शिक्षा के माध्यम से और न्यायालय से न जोड़ा जाए। हिंदी को वे स्वतंत्रता का शंघनाद मानते थे। स्वतंत्रता आंदोलन में गाँधीजी के साथ जितने महापुरूष और स्वतंत्रता सेनानी कंधे से कंधा मिलाकर संघर्ष कर रहे थे, उन सबकी राय थी कि हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा हिंदी ही होनी चाहिए। गाँधीजी ने एक बार कहा था कि अगर हमने इंग्लिश को महत्व दिया तो एक दिन हिंदुस्तान का नाम इंग्लिस्तान भी हो सकता है। इस संबंध में वह चाहते थे कि शिक्षा सदैव मातृभाषा में दी जाए। बेसिक शिक्षा के ऊपर गांधीजी ने गहन चिंतन किया था और उसके केन्द्र में दो बातों पर बहुत बल दिया था–एक भाषा मातृभाषा और दूसरा शारीरिक श्रम शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग होना चाहिए। अंग्रेजी के बारे में उनकी सीधी–सीधी राय थी कि अगर अंग्रेजी हिदुस्तान से न गई और अंग्रेज चला गया तो भी यह देश आजाद होकर भी आजाद नहीं होगा, और उसका कारण वही था कि वो आजादी को साधन मानते थे।

हिंदुस्तान के संविधान में जो संकल्प लिया गया है उसमें लिखा गया है कि प्रत्येक व्यक्ति को सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता दी जाएगी। गांधीजी की दूरदृष्टी में प्रारंभ में ही यह बात आ गयी थी कि अंग्रेजी विदेशी भाषा है और उसके रहते हिंदुस्तान के आम आदमी को आर्थिक और सामाजिक न्याय मिलना असभ्भव है। और आज जब हम देखते हैं कि सरकारी नौकरियों में अंग्रेजी की अनिवार्यता है जिसका लाभ अंग्रेजी जानने वाले उठाते हैं और अच्छी जानने वाले मुश्किल से 10 प्रतिशत हिदुस्तान में मिलेंगे। और अगर 10 प्रतिशत को ही सरकारी नौकरी मिलेगी तो इतना बड़ा आर्थिक अन्याय केवल अंग्रेजी की वजह से हो रहा है। गाँधीजी चाहते थे कि अंग्रेजी को प्रतिष्ठा से न जोड़ा जाये। आज हिंदुस्तान में अंग्रेजी पढ़े–लिखे को शिक्षित माना जाता है और जिसे अंग्रेजी न आती हो, भले ही वह और भाषाओं में पारंगत हो तो उसे पूर्ण शिक्षित नहीं मानते। इसीलिए गाँधीजी कभी–कभी कहा करते थे कि दुनिया से कह दो कि गाँधी को अंग्रेजी नहीं आती। इस वाक्यांश का अर्थ यही था कि अंग्रेजी को प्रतिष्ठा से नहीं जोड़ा जाए। आज जब हम राजधानी या शताब्दी में सफर करते है और उसमें हम हिंदी का अखबार मांग लेते है तो असा पास के यात्री ऐसी दृष्टि से देखते हैं कि जैसे राजधानी में कोई कुपात्र घुस आया हो, तब गांधीजी की बहुत याद आती है।

गाँधीजी ने हिंदी के लिए स्वतंत्रता संग्राम के समय से ही काम करना प्रारंभ कर दिया था। उन्हें जब आजादी से पूर्व हिंदी साहित्य सम्मेलन, इंदौर की अध्यक्षता के लिए आमंत्रित किया गया तो उन्होंने इंदौर के तत्कालीन महाराज से यह शर्त रखी थी कि यदि वे हिंदी के प्रचार और प्रसार हेतु कुछ ठोस योगदान और धनराशि देने का वचन दें तो मैं अध्यक्षता करने के लिए तैयार हूं। उनके कहने से तत्कालीन राजा ने दस हजार रूप्ये दिये थे। सन् 1935 के वह दस हजार रूप्ये आज करोड़ों के बराबर होते। गाँधी ने राज गोपालाचार्य और अपने पुत्र देवदास गांधी को तमिलनाडु में तत्कालीन मद्रास में हिंदी के प्रचार के लिए भेजा था। इसी प्रकार केरल में गाँधीजी की प्रेरणा से नागरी प्रचारिणी संस्था की भी स्थापना हुई थी। भारतीय भाषाओं के बारे में गांधीजी हिदी के पक्ष में इसलिए थे कि स्वतंत्रता संग्राम में और राजकाज के लिए हिंदी उपयुक्त भाषा होगी और उसका कारण यह भी था कि हिंदी और बंगाली में अधिकांश अंतर उच्चारण का है, शब्दावली प्रायः उभयपक्षी है।

मुझे एक बार वर्धा में श्रीमती शेखर बजाज और श्री शेखर बजाज के निमंत्रण पर उसी बजाज वाटिका में रहने का सौभाग्य मिला जिसमें कभी जमनालाल बजाज के जमाने में गाँधी ठहरा करते थे। वहां पर जितने भी निर्देश आज लिखे हुए हैं, वे सब गाँधीजी के इच्छानुसार लिखे गए थे। वह आज भी हिंदी में हैं और तब भी हिंदी में थे।

एक बार गाँधीजी ने दो बच्चों को अंग्रेजी में बात करते हुए सुना और उनसे पूछा कि उनका क्या संबंध है? वो भाई–बहन थे। गांधीजी ने उनसे दूसरा प्रश्न किया कि आपकी मातृभाषा क्या है? और जब उन्होंने यह बताया कि उनकी मातृभाषा हिंदी है तो गाँधीजी ने उन्हें स्पष्ट आदेश दिया कि भविष्य में वह आपस में कभी किसी से अंग्रेजी में बात तब तक न करें जब कि एक पक्ष हिंदी न जानता हो।

गाँधीजी ने एक बार कहा था कि यदि संसद में कोई हिंदी जानने वाला या अन्य भाषा–भाषी अंग्रेजी में बात करते हैं तो उनको सजा का प्रावधान होना चाहिए। कुल मिलाकर गाँधीजी मानते थे कि व्यवस्था परिवर्तन के बिना आजादी निरर्थक होगी और व्यवस्था परिवर्तन के हेतु राष्ट्रभाषा सबसे अधिक सहायक हो सकती है।

हिंदी उनके लिए राष्ट्रीयता का संगीत थी

सत्यव्रत चतुर्वेदी

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने गुलामी की जंजीरों में जकड़े भारत को स्वराज दिलाने में खादी और हिंदी का बड़ा ही रचनात्मक ढंग से उपयोग किया था। ऐसी मिसाल विश्व के इतिहास में और दूसरी कोई नहीं है। गाँधीजी जानते थे कि स्वराज की प्राप्ति के लिए सबसे जरूरी है देशवासियों की मानसिकता में अमूल–चूल बदलाव लाना। परिवर्तन के इस महाअभिमान में खादी को व्यवहार और हिंदी को राष्ट्रीयता का विचार बनाकर ही गाँधीजी ने देश के जनमानस को स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए आंदोलन और उत्प्रेरित किया। उन्हें पूर्ण विश्वास था कि जिस दिन भारत का सर्वसाधारण–जन अंग्रेजी भाषा के मोह को तोड़कर हिंदी की शक्ति को समझ लेगा, उस दिन में ही भारत स्वराज प्राप्ति के अपने लक्ष्य की ओर आगे बढ़ने लगेगा। उन्होंने कहा था–हिंदी ही हिंदुस्तान के शिक्षित समुदाय की सामान्य भाषा हो सकती है। यह बात निर्विवाद सत्य है। यह कैसे हो, केवल यही विचार करना है। आज तक हमारा देसी काम और व्यवहार हिंदी में प्रारंभ नहीं हो पाया है। इसका कारण हमारी भीरूता, अश्रद्धा और हिंदी भाषा के गौरव के प्रति अज्ञान है। गाँधीजी हमेशा ही हिंदी को हिंदुस्तान की आजादी का मूलमंत्र मानते थे। ऐसी हिंदी जो इतनी सरल हो कि गांव–देहात के लोग भी जिसे आसानी से समझ सकें और साथ–साथ वे लोग भी जिनकी मातृभाषा हिंदी न हो, समय–काल और परिवेश के अनुसार अन्य भाषाओं के शब्दों को अपने में समाहित करने की उदार दृष्टि रखती हो, और संपूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधने की दृष्टि रखती हो और संपूर्ण राष्ट्र को एकता के सूत्र में बांधने की दृष्टि भी जिसके पास हो। गाँधीजी कहते हैं कि मुझे विश्वास है कि आनेवाली पीढ़ी उस सर्वमान्य भाषा हिंदुस्तानी पर गर्व करेगी जो असंख्य लोगों और लेखकों द्वारा अपनी आवश्यकता, रूचि और योग्यता के अनुसार कई भाषाओं से खुलेदिल से लिए गए शब्दों के मेल से बनेगी। गांधीजी ने जिस हिंदुस्तानी की राष्ट्रभाषा के रूप में कल्पना की थी, वह हमारी गंगा–जमुनी तहज़ीब की भाषा थी। जिसमें संस्कृत की पवित्रता और उर्दू की मिठास दोनों शामिल हों। जो हिंदुओं की भी प्रिय लगे और मुसलमानों को भी भाए। पंडिताऊ और कठिन हिंदी के वे कभी समर्थक नहीं रहें और न ही भाषा के कट्टरपन के। भाषा को लेकर उनके विचार बेहद स्पष्ट थे। एक बार उन्होंने अपने वक्तव्य में कहा भी था कि भाषा मनुष्य की सृष्टि है और वह अपने सृष्टा के रंग में रंगी रहती है। हर भाषा में अपना अनंत विस्तार करने की शक्ति होती है। भाषा को उसके बोलनेवाले और लिखनेवाले जैसा बनाते हैं वह वैसी ही बन जाती है। भाषा का जो रूप अधिक लोकप्रिय होगा और जिसे लोग फिर वे हिंदू हों या मुसलमान ज्यादा समझ सकेंगे, वही राष्ट्रभाषा बनेगी। अंग्रेजी–परस्त वे लोग जो इस बात की दलील देते थे कि अंग्रेजी के जरिए ही तरक्की हासिल की जा सकती है और अधिक–से–अधिक लोगों को अंग्रेजी सीखनी चाहिए। गाँधीजी ने आग्रह करते हुए कहा था कि अंग्रेजी न कभी सारे हिदुस्तान की भाषा हो सकती है, न होने ही चाहिए ऐसी भाषा तो हिंदी यानी हिन्दुस्तानी ही हो सकती है क्योंकि उत्तर भारत के करोड़ों हिंदु–मुसलमानों इसे बोलते हैं। अंग्रेजी के बारे में ऐसी धारणा रखना जनसाधारण और अंग्रेजी पढ़े–लिखें लोगों के बीच स्थाई दीवार खड़ी करना और अपने ध्येय तक पहुंचने में देश की प्रगति को पीछे धकेलना है। अंग्रेजी–परस्त मानसिकता को गाँधीजी स्वराज प्राप्ति के रास्ते की सबसे बड़ी बाधा मानते थे। उन्होंने अंग्रेजी–भक्त अभिभावकों को आगाह करते हुए कहा था की अपने लड़के लड़कीयों को यह सोचने के लिए भी बढ़ावा देना कि अंग्रेजी के ज्ञान के बिना समाज के सबसे ऊँचे तबके में उनकी पहुँच हो ही नहीं सकती। देश के पुरूषत्व और खासतौर पर नारित्व के साथ हिंसा का व्यवहार करना है। यह विचार घोर लज्जाजनक और बर्दाश्त के बाहर है। अंग्रेजी के व्यामोह से छुटकारा पान स्वराज की पहली और जरूरी शर्त है।

गाँधीजी भारत का स्वार्णिम भविष्य हिंदी में देख रहे थे, तभी तो 26 मार्च, 1918 को हिंदी साहित्य सम्मेलन इन्दौर के सभापति पद से बोलते हुए उन्होंने कहा था–मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने का गौरव प्रदान करें। हिंदी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। गांधीजी ने इस अवसर पर तमिल और आंध्र में निःशुल्क हिंदी शिक्षक भेजने की योजना को भी सफल बनाने का आग्रह किया। वे हिंदी अंतरप्रांतीय संपर्क भाषा के रूप में विकसित करने के अनथक प्रयास करते थे। उनका मानना था कि देवनागरी लिपि के माध्यम से अपनी मनपंसद कोई एक प्रांतीय भाषा सीखनी चाहिए। यह व्यावहारिक भी है तेलुगू, मलयालम, कन्नड़, उड़िया और बांग्ला सीखने की इच्छा रखनेवालों से देवनागरी के अलावा इन छह लिपियों को सीखने की अपेक्षा की जाए। अगर कोई प्रांतीय भाषाएं सीखना चाहे और कोई प्रांतीय भाषा–भाषी हिंदी खीखना चाहे तो यह छह लिपियों

का अभेद्य प्रतिबंध ही उसके सीखने के मार्ग में कठिनाई उपस्थित करता है। इसलिए ही मैं कहता हूं कि हरेक प्रांत के लोग अपनी–अपनी भाषा जान लेने के साथ–साथ एक अखिल भारतीय भाषा और सीख लें तो इसमें भारतवर्ष के लिए अवांछनीय या अस्वाभाविक बात क्या हो जाएगी। जबकि यह काम देवनागरी लिपि द्वारा बड़ी आसानी से किया जा सकता है। गाँधीजी चाहते थे कि प्रांतीय भाषाओं का श्रेष्ठ साहित्य हिंदी में अनुदित होकर आए और उसकी मूलभाषा भी देवनागरी लिपि के जरिये लोगों तक पहुंचे। ताकि विभिन्न भाषाओं के साहित्य से दूसरी भाषा के लोग परिचित हो सकें और मूलभाषा से भी उनकी निकटता बन पाए। हिंदी को इस काम के लिए वह सर्वाधिक उचित मानते थे। आंदोलनों, सत्याग्रहों और पद्यात्रओं के जरिए भारत के जितने व्यापक क्षेत्रों में बापू ने जनसंपर्क किया हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाने का उनका संकल्प उतना ही गाढ़ा होता चला गया। तभी तो 26 मार्च 1937 को दक्षिण भारत, हिंदी प्रचार सभा के दीक्षांत समारोह में बोलते हुए उन्होंने कहा था–बहुत पहले ही मुझे इस बात का विश्वास हो गया था और मेरा विश्वास तब से अनुभव द्वारा पुष्ट हुआ है कि कोई भारतीय भाषा ही भारत की राष्ट्रभाषा बन सकती है और यदि भारत को एक राष्ट्र बनना है तो किसी–न–किसी भाषा को राष्ट्रभाषा बनना ही चाहिए तो वह भाषा केवल हिंदी है और मैं हमेशा इस–उद्देश्य की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहा हूं। बापू के विचार में राष्ट्रभाषा और राष्ट्रभक्ति वृक्ष के एक डंठल से लटकते दो फल हैं और भारत देश वह वृक्ष है। भले ही गांधीजी की मातृभाषा गुजराती थी, मगर हिंदी की विराटता और व्यापकता को उन्होंने अपनी आत्मा की गहराई से स्वीकारा था। वह हिंदी में बोलते थे तब भी उनकी यह इच्छा हमेशा रहती थी कि उनके विचार हिंदी के जरिए लोगों तक पहुंचे। इसी भावना से ओत–प्रोत होकर उन्होंने 16/06/1921 को हिंदी नवजीवन का प्रारंभ किया और उसकी संपादकीय में लिखा–हिंदी में अपने विचार प्रकट करने की इच्छा मुझे बहुत समय से थी। परन्तु आजतक परमात्मा ने उसे सफल नहीं किया था। हिंदुस्तानी को भारतवर्ष की राष्ट्रभाषा बनाने के लिए मैं हमेशा से प्रयास करता रहा हूं। जब तक नवजीवन इस भाषा में नहीं निकल सका था, तब तक मुझे दुख था। हिंदी में लिखने और बोलने में गांधीजी गौरव का अनुभव करते थे। हिंदी उनके लिए राष्ट्रीयता का संगीत था। जो राजनेता अंग्रेजी में भाषण देते थे, उनके लिए गांधीजी कहा करते थे–अंग्रेजी में भाषण देने की आदत ने हिदुस्तान के राजनीतिज्ञों के मन में जो घर कर लिया है, उसे मैं अपने देश और मनुष्यता के प्रति अपराध मानता हूं, क्योंकि हमलोग अपने ही देश की उन्नति में रोड़ा अटकाने वाले बन गए हैं। वे कहते थे कि हमें अंग्रेजी भाषा की भी जरूरत है, मगर अपनी भाषा के सम्यानाश के लिए नहीं। उनका मानना था कि हमारे समाज का सुधार हमारी अपनी ही भाषा से हो सकता है और हमारे व्यवहार में सहजता और सरलता भी अपनी भाषा से ही आती है। बापू के लिए सुराज राष्ट्रभाषा की सीपी में बंद मोती के समान था। भावुक होकर वे यही कहा करते थे कि मैं तो प्रजा से स्वराज मांगता हूं। प्रजा से स्वराज मिल जाएगा तो पीछे राजा से भी मिल जाएगा। यदि आपने इतना कर लिया तो आपमें सच्ची निर्मलता आ जाएगी और आपक मनोरथ सफल होंगे। लेकिन बिना राष्ट्रभाषा के यह कहां संभव है। यह जनता–जनार्दन से कहा करते थे कि देश सेवा के लिए तो उत्सुक सब हैं, मगर राष्ट्र–सेवा तब तक संभव नहीं जब तक कोई राष्ट्रभाषा न हों। इस अर्थ में बहुत लोंगों के द्वारा हिंदी को काम में लाया जाना मानवतावाद के क्षेत्र की बात हो जाती है। देश के कोने–कोने में गांधीजी ने साहित्य–सम्मेलन आयोजित करवाकर हिंदी का अलख जगाया और पुरूषोत्तम दास टंडन, डॉ. सम्पूर्णानंद, काका कालेलकर, वियोगी हरि, कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी, मैथिलीशरण गुप्त, बनारसीदास चतुर्वेदी और बाबू जगजीनराम– जैसे हिंदी के अनन्य सेवियों को हिंदी की श्रीवृद्धि का संकल्प दिलाया। और तो और 1927 के मानपुर अधिवेशन में राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी संबंधी प्रस्ताव पारित कराकर सारे देशवासियों को राष्ट्रभाषा के एकता सूत्र में बांध दिया। आज भारत एक राष्ट्र है और राष्ट्रभाषा हिंदी जिसकी आत्मा है। इस भाषा में राष्ट्रीयता की खादी को स्वावलंबन के चरखे पर स्वयं हमारे राष्ट्रपिता ने अपने कर्मठ हाथों से काता है। उनके बिना राष्ट्रभाषा की चर्चा ही कहां संभव है। राष्ट्रभाषा के इस अमर प्रेरणापुरूष को मेरे शतशः प्रणाम.....।

आपको मानवता में विश्वास नहीं खोना चाहिए।

मानवता एक सागर की तरह है, यदि सागर की कुछ बूंदे खराब हैं तो पूरा सागर गंदा नहीं हो जाता है.

महात्मा गाँधी

हिंदी पत्रकारिता और गाँधी

वेद प्रताप वैदिक

पिछले एक हजार वर्ष बल्कि दस हजार वर्षों के मानव इतिहास पर विशेषकर जब–जब पश्चिमी इतिहास पर गौर करते हैं तो बड़ा आश्चर्य होता है, उसमें न कहीं बुद्ध का नाम दिखाई पड़ता है न कहीं गांधी का। सोचकर आश्चर्य होता है कि वैज्ञानिकों के नाम हैं, विचारकों के नाम हैं, युग प्रवर्तकों के नाम हैं, लेकिन इन दो महान पुरूषों के नाम, गौतम बुद्ध और गाँधी के नाम नहीं है। लेकिन गाँधी को आज याद किया, इस संस्था ने 30 जनवरी और 2 अक्टूबर के अलावा तक अलग तिथि पर। उसका कारण है, उनके द्वारा निकाली गई गई पत्रिका 'इंण्डियन ओपीनियन'। इंण्डियन ओपीनियन महात्मा गांधी ने 1903 में प्रकाशित की थी। 4 जून 1903 अब से ठीक सौ साल पहले। नाम तो उसका इंण्डियन ओपीनियन था, लेकिन गाँधी की शायद ही कोई पत्रिका ऐसी हो या ऐसी कोई पुस्तक निकली हो जो सिर्फ अंग्रेजी में हो–इंण्डियन ओपीनियन भी चार भाषाओं में निकलती थी। नाम उसका अंग्रेजी में था–इंण्डियन ओपीनियन लेकिन वह अंग्रेजी, हिंदी, गुजराती और तमिल में निकलती थी, और महात्मा गाँधी जी अंग्रेजी के साथ गुजराती और हिंदी में भी लिखते थे। कैसी थी गाँधी की पत्रकारिता ? इसके बारे में उसके स्वरूप और चरित्र पर बात करने के पहले 'इंण्डियन ओपीनियन' की बात करें।

गाँधी कौन थे ? गाँधी कोई बिहार या मध्यप्रदेश, मेरठ या बनारस में पैदा हुए व्यक्ति नहीं थे। एक छोटी सी जगह पोरबंदर के थे। वहां मैं अभी पिछले हफ्ते पहली बार गया। राजकोट का एक छोटा सा स्थान, वहां पैदा हुए व्यक्ति थे। हिंदी उन्हें आती नहीं थी, भारत में रहते हुए गाँधी ने दो काम कभी नहीं किए। एक तो अखबार नहीं पढ़ा। गाँधी ने कभी अखबार ही नहीं पढ़ा, जब तक वे भारत में थे, जब ब्रिटेन पढ़ने बए तो लंदन जाकर उनकों मालूम हुआ कि अखबार क्या चीज होती है, और विनोबा तो कहा करते थे... वर्धा में हम लोग उनके पास रहे और समझा कि अखबार बीमारी है, मैं उसको पढ़ता ही नहीं। सुबह–सुबह बीमारी के दर्शन क्यों करने? तो गांधी ने कभी अखबार पढ़ा नहीं भारत में रहते हुए, दुसरी हिंदी नहीं पढ़ी। लेकिन जो अखबार गाँधी ने निकाले, पत्रिका निकाली, शायद वो भारत के उस समय की सबसे अधिक प्रसारित और सबसे अधिक तेजस्वी पत्रिकाओं में से थी। गाँधी को हिंदी का चस्का दक्षिण अफ्रीका जाकर लगा और भारत में लौटने के बाद हिंदी उन्होंने ध्यान से पढ़ी। वो गाँधी पिछले सौ वर्ष में भारत में हिंदी का सबसे बड़ा पुरोधा था। अंग्रेजी के वर्चस्व का विरोध सबसे ज्यादा गाँधीजी ने किया। उनके जितना शायद देश में किसी ने नहीं किया। उनके पहले महर्षि दयानंद ने यह ज्योति जगाई, वो भी गुजराती थे और इस काम को पत्रकारिता के खासकर हिंदी पत्रकारिता के हक में किया। हिंदी पत्रकारिता का आरम्भ हिंदी इलाके में नहीं हुआ। इसका शुभारंभ सबसे पहले 30 मई, 1826 को कलकत्ता में हुआ। 'उदत मार्तण्ड' का प्रारंभ 1826 में हुआ और किसी भी हिंदी प्रदेश से लगभग 25 साल तक कोई हिंदी का पत्र नहीं निकला। पहले 25 साल तक हिंदी पत्रकारिता का गढ़ एक अहिंदीभाषी शहर बना रहा और वह था कलकत्ता। यह अद्‌भुत संयोग है कि हिंदी पत्रकारिता के संस्थापकों में अहिंदीभाषियों की भूमिका अग्रगण्य रही।

तो गाँधी 'इण्डियन ओपीनियन' प्रकाशित करते हैं, दक्षिण अफ्रीका से 1903 में यह कोई अजूबा नहीं है। गाँधी के पहले अनेक अहिंदी भाषी स्वनामधन्य पत्रकार हो चुके हैं। अमृतलाल चक्रवर्ती, शारदाचरण मित्र, श्यामसुंदर सेन आदि। पहला दैनिक अखबार हिंदी का कलाकांकर से बाद में निकला। राजा रामपाल सिंह ने बाद में निकाला। पहले कलकत्ता से निकला। एक परंपरा रहीं, हिंदी की पत्रकारिता और हिंदी को आगे बढ़ाने वालों की जिसमें अहिंदी भाषियों का योगदान अत्यंत उल्लेखनीय रहा। गांधी ने जब 1903 में इंडियन आपेनियन निकाला डरबन से तो, अपना सारा पैसा झोंक दिया। उस जमाने में पांच हजार पौंड। किसे कहते हैं पांच हजार पौंड? फिनिक्स आश्रम बनाने में और इंडियन ओपीनियन लगाने में झोंक दिया। सच्चाई की परीक्षा तो इसी बात से होती है। इंडियन ओपीनियन के पुराने अंकों को आप पढ़ें, यहां भी उपलब्ध है। लंदन में कई पुस्तकालयों में उपलब्ध है। 1903 में गांधी की उमर कितनी थी–34साल। 1869 में पैदा हुए थे 34 साल का एक वकील, कैसी अद्‌भुत दृष्टि। जिसने बाद में हिंद स्वराज लिखा। उसके बीज 'इंडियन ओपीनियन' में दिखाई पड़ते हैं। कैसी हिंदी लिखते थे गांधीजी 1903 में। उनका मूल हिंदी में लिखा हुआ–अब भी छपा हुआ मिलता है। केलनबारव, अब्दुल्लाजी जो उनको ले गये थे। कई गुजराती भाई और पारसी भाई सब उनके साथ सत्याग्रह में लगे रहते थे।

जो भाषा वे लोग बोलते थे, वही गाँधीजी लिखते थे। तो तमिल को वे लिखते थे, अपने हाथ से 'टामिल'। वक्त को 'बखत'। मालवा में हमारे यहां 'बखत' बोलते हैं। कोई वक्त नहीं बोलता। निकलेगी–'नीकलेगी', न में बड़ी ई की मात्रा। खर्च को गुजरात में या किसी गाँव में कोई खर्च नहीं बोलता है। उन्होंने लिखा कि यदि डेढ़ रूपया 'खरच' कर सकते हो तो इंडियन ओपीनियन को भिजवा देना और भिजवा देना यानी 'भ' में छोटी इ की मात्रा नहीं–'भीजवा' देना। यहाँ भीजने का मतलब भीगना भी होता है। 'भीजवा देना'। एक जगह लिखा कि इंडियन ओपीनियन खरीदना हो तो ऐसा नहीं कि डरबन में ही 'मील पावैगा'। मिल पावेगा की जगह लिखा है, 'मील पावैगा'। बल्कि हर जगा मिल सकता है यानी जो बात ऑल इंडिया रेडियो में 1936 में पतरस बुखारी कहा करते थे कि रेडियो की भाषा यानी बोली हुई भाषा पत्रकारिता की भाषा यानी साहित्य की भाषा यानी लिखी हुई भाषा एक जैसी होनी चाहिए। उस बोली हुई भाषा में लिखने वाले अगर सबसे पहले लेखक, कोई साहित्यकार या कोई विद्वान पत्रकार थे तो उनमें गाँधीजी की गणना थी। गाँधीजी जो भाषा बोलते थे, वही लिखते थे। पारसी लोगों का अब भी जो उच्चारण है, हिंदी का, वह इंडियन ओपीनियनमें गाँधीजी के हाथ के लिखे और संपादकियों का है। इंडियन ओपीनियन के संपादकगाँधीजी नहीं थे। गाँधीजी ने पैसा लगाकर उसको चालू किया था। गाँधीजी उस पत्र के मालिक थे। संपादक थे–मनसुखलाल नागर और उपसंपादक थे मदनजीत व्यावहारिक। ये दो सज्जन उसमें लगे रहते थे और गाँधीजी संपादकीय दोनों–तीनों भाषाओं में लिखते थे। अद्‌भुत शब्दों का प्रयोग करते थे, जिनका हम आजकल प्रयोग नहीं करते।

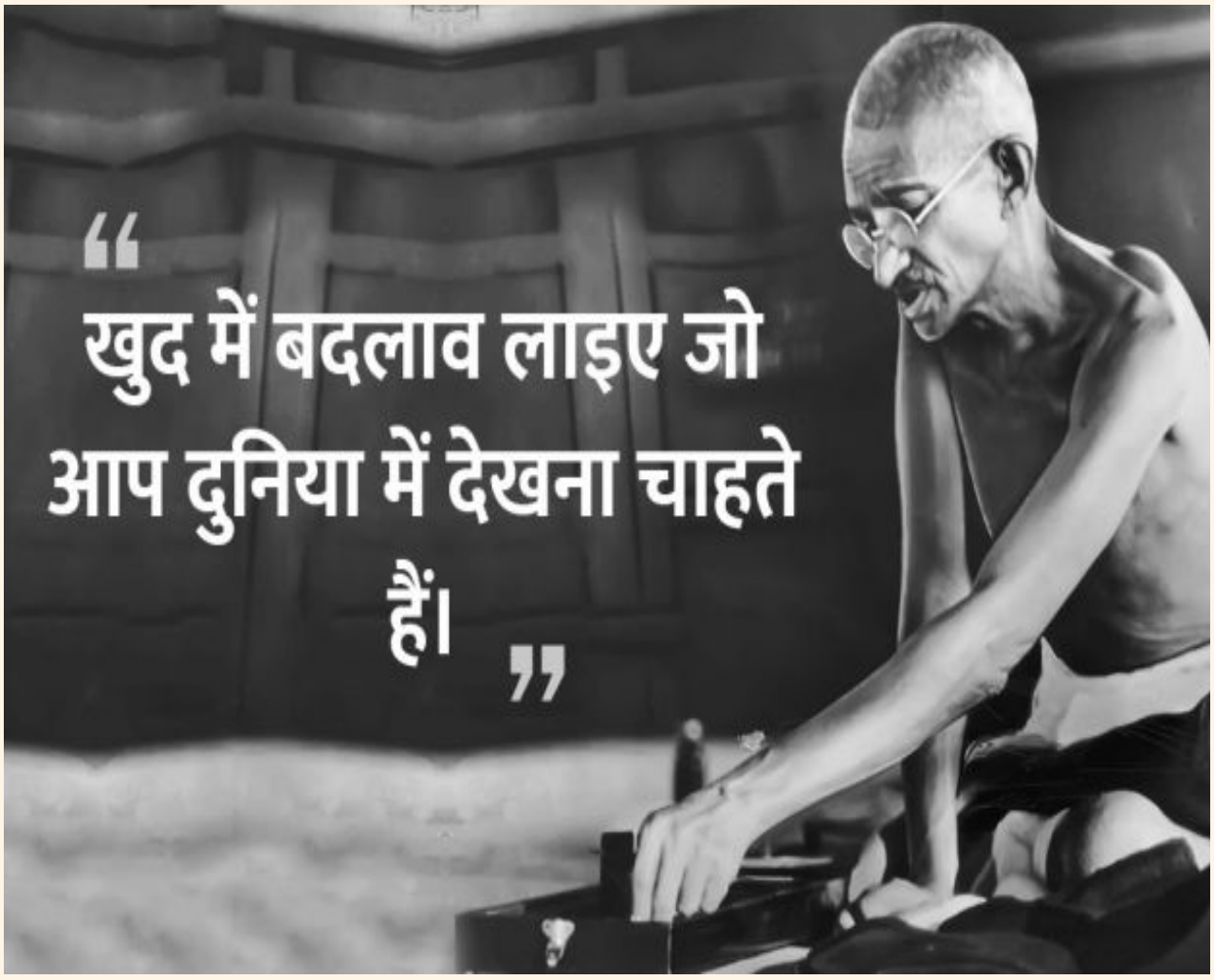

गाँधी की हिंदी आ चुकी है...

डॉ. इन्द्रनाथ चौधरी

सन् 1947 में गुजरात के बड़ोंच में गाँधीजी ने पहली बार स्वाधीनता मिलने के उपरान्त भारत को राष्ट्रभाषा क्या होगी, इसका उल्लेख किया था। उनका स्पष्ट कहना था कि देश की स्वाधीन होने के उपरान्त हिंदुस्तानी इस देश की राष्ट्रभाषा होगी, जो इस देश की अधिकतम जनता की सामान्य बोलचाल की भाषा है। इस वक्तव्य से गाँधी की भाषा दृष्टि के दो सूत्रों का पता लगता है। गाँधी को अंग्रेजी का अच्छा ज्ञान था इसलिए उसका पक्ष लेने मे उनको कोई कठिनाई नहीं थी। इसके बावजूद उनकी यह स्पष्ट धारणा थी कि यह देश जब तक अपनी संस्कृति भाषा और अपनी जमीन जुड़कर अपने अस्तित्व का परिचय नहीं देगा, तब तक विश्व के देशों में यह अपना कोई स्थान नहीं बना पायेगा। इसलिए वे भारतीय संस्कृति के पक्षधर थे। भारत में जन्में, विकसित हुए और बाहर से आगत धर्मों की बात करते थे और उसकी भाषायी पहचान को महत्व देते थे और इसके अतिरिक्त वो जनता से जुड़ी हुई भारतीय विचारदृष्टि का प्रसार चाहते थे। इन्हीं सब कारणों से उन्होंने हिंदुस्तानी का पक्ष लिया था।

इतिहास की धारा मगर दूसरी तरफ बह निकली। किसी को इसका कोई अनुमान नहीं था। हम स्वाधीन हुए, परन्तु रक्तरंजीत एक बटे हुए देश के नागरिक के रूप में हमें स्वाधीनता मिली। स्वाधीनता के बाद पंडित नेहरू देश के प्रधानमंत्री बनें। वह भी जनता की भाषा के पक्षधर थे और हिंदुस्तानी में ही अपने भाषण दिया करते थे, परन्तु हिंदी का पक्ष लेने वाले नेताओं का एक बड़ा पक्ष नेहरू पर इस बात को लेकर हावी हो गया कि देश स्वाधीन होने के बाद पाकिस्तान ने उर्दू को देश की भाषा घोषित कर दिया है, इसलिए भारत को भी हिंदी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करना चाहिए और उसे ही राष्ट्र की भाषा का पद मिलना चाहिए। हिंदुस्तानी को चाहते हुए भी नेहरू कुछ कर नहीं सके। अष्टम अधिसूची में हिंदी को लिपिबद्ध कर लिया गया और संविधान में उसे राजभाषा तथा संपर्कभाषा के रूप में स्वीकृत किया गया।

गाँधीजी केवल हिंदुस्तानी के पक्षधर ही नहीं थे, उन्होंने देवनागरी लिपि में फेरबदल करके स्वर वर्णों को लिखने का एक नया स्वरूप अविष्कार किया था, जो यद्यपि लोकप्रिय नहीं हो सका। वे जानते थे कि देश की एकता के लिए यह आवश्यक है कि विविधता को प्रश्रय देते हुए भी एक एकता का स्वरूप निर्धारित करना जरूरी है। इसीलिए भारत की विभिन्न भाषाओं के महत्व को स्वीकार करते हुए भी वे चाहते थे कि हिंदुस्तानी देश की राष्ट्रभाषा बनें। जब वो पहली बार सन् 1915 में शांति निकेतन गए थे, वहां पर उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर के साथ पांच–छः दिन बिताये थे और वापस आकर उन्होंने अपने एक मित्र को पत्र में लिखा था कि मैं आजकल बंगला सीख रहा हूं। वे अपने अलग ही लहजे से हिंदी बोलते थे, परन्तु उनकी हिंदी सहज, सरल और स्पष्ट थी। गुजराती में भी वह काफी लेखन कार्य किया करते थे। उन्होंने हिन्द स्वराज पहले गुजराती में लिखा था और बाद में उसका अंग्रेजी में अनुवाद किया गया। उन्हें जब हिंदी साहित्य सभा के अध्यक्ष के रूप में बुलाया गया था, तब उन्होंने रवीन्द्रनाथ ठाकुर को एक पत्र लिखकर पूछा था कि भाषा के बारे में विशेष रूप से हिंदी के बारे में, मुझे क्या कहना चाहिए। रवीन्द्रनाथ ने उन्हें शीघ्र उत्तर देते हुए कहा था कि उन्हें यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि हिंदी ही इस देश की राष्ट्रभाषा है, परन्तु यह हिंदी का कर्तव्य बनता है कि वह भारत की दूसरी भाषाओं की उन्नति और विकास में सहयोग दें। हमें इसका संपूर्ण ज्ञान है कि विश्व भारती की स्थापना के बाद रवीन्द्र ने वहां और किसी भारतीय भाषा का नहीं, हिंदी की स्थापना की थी।

पं. विद्यानिवास मिश्र का यह कहना है कि यदि हिंदुस्तानी को उस समय पं. नेहरू राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार कर लेते तो वह देश के लिए एक वरदान होता और भाषायी समस्या हमेशा के लिए खत्म हो जाती। गाँधीजी जब हिंदी को लेकर यह सब बातें कर रहे थे, तब इस देश में एक बहुत बड़ा तबका उपनिवेशवादी मानसिकता का शिकार था और अंग्रेजी को देश को आधुनिक बनाने के लिए एक महत्वपूर्ण घटक के रूप में इस्तेमाल करता था। गाँधीजी ने इस मानसिकता का उत्तर हिंद स्वराज लिखकर दिया था। उन्होंने विदेशी शक्तियों के षड्यंत्र का पर्दाफाश किया था कि पश्चिमीकरण ही आधुनिकीकरण है। वे मानते थे कि देश की जमीन से जुड़कर जो व्यक्ति आगे बढ़ता है, वही आधुनिक है। रवीन्द्रनाथ भी तो लगभग यही बात कहते थे कि मन की स्वाधीनता आधुनिकता है। पश्चिमीकरण हमें गुलाम बनाता है, हमारी स्वतंत्र चिंतनधारा को काटता है, और हमें पराधीन मनोवृति का दास बना देता है। उससे हम तभी उबर सकते हैं, जब हम अपने देश की जमीन से जुड़ते हैं, अपनी संस्कृति को ओढ़ते हैं, अपनी भाषा बोलते हैं और निरंतरता में अपनी पहचान बनाते हैं।

गाँधीजी को कभी किसी ने अंग्रेजी में बोलने के लिए कहा था। उनका यह उत्तर सर्वाविदित है। उन्होंने कहा था कि 'कह दो गाँधी को अंग्रेजी नहीं आती।' अगर हम इस पर अपनी तरफ से थोड़ा ध्यान दे तो हमें यह लगता है कि इस देश का नौकरशाही हिंदी को नहीं चाहता क्योंकि नौकरशाही का एक अलग मनोविज्ञान होता है। वे सोचते हैं कि जनता से अलग रहते हुए ही हम अपनी पहचान बना सकते हैं। यह मनोवृत्ति कई क्षेत्रों में लोगों की मानसिकता बन गई है। वह सोचते है कि हम अगर अलग रहें, तभी हमारा अस्तित्व है, हमारी विशिष्टता है। गाँधीजी ने यह स्पष्ट किया था कि यह बहुत बड़ी भूल है। कदाचित इसीलिए उनकी धोती घुटनों के उपर भारत की आम जनता के समान पहनी गई धोती के समान होती थी । उनके तन पर कोई वस्त्र नहीं होता था। उनकी संपत्ति केवल एक चप्पल, एक लटकती हुई पॉकेट घड़ी और चश्मा था। जनता के साथ जुड़कर ही उन्होंने अपना अस्तित्व अपनी गरिमा और अपनी विशिष्टता की पहचान दी थी। यह बात समझने की है कि देश का जो प्रशासनिक वर्ग हैं, बार–बार यह कहता है कि अंग्रेजी के द्वारा ही प्रशासन चल सकता है। यह उनकी बहुत बड़ी भूल है। देश को चलाने या प्रशासन को चलाने के लिए दो तत्वों की जरूरत पड़ती है–चरित्र और गहरा परिश्रम। आप चाहे किसी भी भाषा में प्रशासन चलायें, अगर आपका अपना एक चरित्र है और आप गहरा परिश्रम करने वाले व्यक्ति हैं तो आपको सफलता मिलेगी ही। राजभाषा और संपर्क भाषा के रूप में हिंदी के विकास के लिए और हिंदी की योजना बनाने के लिए नौकरशाही तैयार नहीं है। हिंदी प्लानिंग राजनीतिक ढंग से की गई है और नौकरशाही ढंग से उसकी परिचालना हुई है। राजनीतिक विवाद में पड़ जाने के कारण हिंदी को लेकर काफी सौदेबाजी होती रही है और परिणामतः पॉलिसी को लेकर समझौता किया जानें लगा और जिससे राजभाषा हिंदी के कार्यान्वयन में बाधा आई।

गाँधीजी के विभिन्न भाषणों और लेखों में हिंदी का पक्ष लेते हुए बहुत सारी बातें कही गयी है। उन बातों का निचोड़ यह है कि यद्यपि देश की प्राण शक्ति दूसरे विदेश से आगत वस्तुओं का स्वांगीकरण तथा अनुकूलनीयता है, परन्तु इसके बावजूद गाँधीजी अंग्रेजी को आत्मसात करने के पक्ष में नहीं थे। उनकी तो मातृभाषा गुजराती थी और वे हिंदी को आत्मसात करना चाहते है। इसलिए हिंदी को लेकर इतनी सारी बातें उन्हेंने जीवन भर कही।

आज हमें प्रतीत हो रहा है कि गाँधीजी की बात कितनी सच थी। देश की गरिमा उसकी भाषा, उसकी संस्कृति होती है। विदेश में जब हम जाते हैं, तब हमें पता चलता है कि अंग्रेजी बोलने से विदेशी हमें किन नजरों से देखते हैं। वे कहते हैं कि क्या हिदुस्तान की कोई भाषा नहीं है।

संविधान परिषद (कन्स्टीट्यूशन एसेंबली) के लिए राजभाषा हिंदी सबसे अधिक अस्थिर मुद्दा था। न तो कांग्रेस पार्टी, न ही संविधान परिषद् की कोई कमेटी इसे प्रस्ताव के रूप में प्रस्तुत करना चाहती थी। निजी विधेयक के रूप में के.एम.मुंशी, एन.गोपाल स्वामी अध्यनगर तथा बी.आर. अम्बेडकर को प्रस्तुत करने को कहा गया। 12 सितम्बर 1949 को एन. गोपाल स्वामी अय्यंगर ने प्रस्ताव को संविधान परिषद में प्रस्तुत किया। ये सभी अहिंदी भाषी थे। प्रस्ताव का समर्थन भी अहिंदी भाषियों ने किया–के.शंकर देव, आंध्र की श्रीमती दुर्गाबाई, मौलाना मुंशी, कृष्णमूर्ति राव। इसमें एक बात का पता लगता है कि हिंदी में जीवतंता है। जीवतंता के साथ ही विवाद जुड़ता है–जहां मौत की शांति विराजमान है, वहां कहां विवाद। इन साठ वर्षों में जो अद्भुत घटना घटी है कि हिंदी आज सर्वाधिक परिचालित भाषा बन गई है। एक समय था हिंदी बोलने में लोग कतराते थे,हिंदी बोलने में हीनता अनुभव करते थे और इसके विपरीत अंग्रेजी बोलने में श्रेष्ठता महसूस की जाती थी। परन्तु वह स्थिति आज नहीं है। उसका कारण मैं या आप नहीं है, गठबंधन सरकार है। जहां प्रांत के अत्यन्त बुद्धिमान राजनेता केन्द्र में आए हैं, जो अंग्रेजी नहीं बोलते, परन्तु अपनी लोक बुद्धि से सबसे बड़े सार्वजनीक उपक्रम को नुकसान से नफा में बदल डालते हैं। ये लोग हिंदी बोलते हैं। अब हिंदी को राजभाषा के रूप में प्रसारित करने का कोई दबाव नहीं है। बहुभाविक, बहुजातीय तथा बहुधर्मीय तथा सामाजिक संस्कृति द्वारा परिचित भारत का एक अपना मनोविज्ञान है। वह कभी भी एक प्रस्तरीय दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं करता....यह भारतीय जनता का मनोविज्ञान है। हिंदी को राजभाषा के रूप में प्रतिष्ठित करने के दबाव के कम होते ही हिंदी फैलने लगती है। यह देश दबाव में कुछ नहीं करता है। सवाल है कौन–सी हिंदी आई है?

एक हिंदी है जिसमें हिंदी के साथ अंग्रेजी शब्दों के प्रयोग की भरमार है। भाषा विज्ञान की शब्दावली में कोड मिश्रण करके यह हिंदी बोली जाती है और पवित्रता के पक्षधर इसे हिग्लिश कहकर इसका मजाक और विरोध करते है। मगर इस तरह की हिंदी ने ही हिंदी को सर्वभारतीय स्वरूप प्रदान किया है ।

महात्मा गाँधी और हिंदी

ललित सुरजन

महात्मा गाँधी के भाषा संबंधी विचारों, खासकर हिंदी के बारे में कही गई उनकी बातों पर पिछली एक सदी के दौरान काफी चर्चाएँ हुई हैं और गुंजाइश कम ही बचती है कि इस बारे में कोई नई स्थापना की जा सके। फिर भी महात्मा गाँधी और हिंदी–इस विषय पर वृहत्तर संदर्भों में विचार करते हुए मुझे दो बातें खासतौर पर आकर्षित करती है। पहली तो यही कि दक्षिण अफ्रीका से लौटने के तुरंत बाद भारत के स्वाधीनता संग्राम में भाग लेने के प्रारंभिक दिनों से ही भाषा के प्रशन पर भी उनकी विचार प्रक्रिया समांतर जारी रही। दूसरे इस मुद्दे पर उन्होंने अपनी एक सुविचारित राय कायम की, इस पर विविध मंचों का उपयोग अपना मंतव्य व्यक्त करने के लिए किया और इससे भी आगे बढ़कर अपने विचारों को मूर्त रूप देने के लिए एक सुस्पष्ट कार्य नीति बनाई व उसके लिए संगठनिक ढाँचा भी तैयार किया।

गाँधीजी के भाषा संबंधी विचारों की पिछले दशकों में अलग–अलग तरीकें से व्याख्या करने की कोशिश की गई है। ऐसा करते हुए विद्वान टीकाकार अक्सर अपने भावों को गाँधीजी के विचारों पर प्रक्षेपित करने लगते हैं मैंने हिंदी के प्रश्न पर आयोजित विचार गोष्ठियों में ऐसे वक्ताओं को सुना है, जो इजरायल में हिंदू भाषा को अपनाए जाने का उदाहरण देते हुए भारत में भी ऐसा ही करने की अपेक्षा करते है। ऐसे विद्वान अपने को गाँधीवादी के रूप में पहचाना जाना पसंद करते हैं। ऐसा करते समय वे दोनों के बीच इतिहास, भूगोल, परंपराओं के जो विभेद है, उनकी अनदेखी कर देते हैं। दूसरी तरफ ऐसे अध्येता भी हैं, जो गाँधी को संस्कृतनिष्ठ अभिजातवर्गीय हिंदी का पोषक और प्रवक्ता सिद्ध करने में जुटे हुए हैं। भारत की जनतांत्रिक व्यवस्था में जो सामाजिक–राजनीतिक विमर्श चल रहा है उसकी छाया ऐसे तर्कों पर देख पाना कठिन नहीं हैं।

यह हमारा सौभाग्य है कि देश के स्वाधीनता संग्राम में हमें महात्मा गाँधी का नेतृत्व प्राप्त हुआ। यह बात मैं इसलिए कह रहा हूं कि विश्व रंगमंच पर ऐसे बहुत व मननशील जननायक यदा–कदा ही हुए हैं। गाँधीजी का अनुभव क्षेत्र जितना विराट था, उनका अध्ययन क्षेत्र भी उतना ही विपुल और विविधता से परिपूर्ण था। यह उनके जैसे व्यक्ति के लिए ही देख पाना संभव था कि देश की आजादी की लड़ाई में भाषा की भूमिका कितनी अहम हो सकती है। यह हम जानते हैं कि भारत बहुविध, संस्कृतियों का देश है, इस परिदृश्य में भाषा एक महत्वपूर्ण घटक है। गाँधीजी जानते थे कि देश की पचास प्रतिशत से अधिक आबादी हिंदी बोल और समझ लेती है। इसलिए यह उनकी राय थी कि हिंदी देश की संपर्क भाषा बनें, लेकिन वे यह भी जानते थे कि हिंदी को इस तरह से सरल बनाना होगा कि अन्य भाषा–भाषी भी उसके साथ नाता जोड़ सकें। इसी दृष्टिकोण से उन्होंने हिंदी के बजाय हिंदुस्तानी की वकालत की।

मेरी राय में गाँधीजी कोई अनूठी स्थापना नहीं कर रहे थे, लेकिन कई बार सहज सामान्य बात को भी हम तभी अंगीकार कर पात हैं जब गाँधी जैसा कोई व्यक्ति उसे करें। एक उदाहरण से बात शायद कुछ स्पष्ट हो। प्रेमचंद आज भी भारत और खासकर हिंदी के सबसे बड़े लेखक के रूप में प्रतिष्ठित है। यह इसलिए संभव हुआ क्योंकि प्रेमचंद ने ठीक वैसी ही भाषा में साहित्य रचा जैसी गाँधीजी ने कल्पना की थी। पंडित नेहरू ने भी गाँधीजी की इस भाषा नीति को व्यक्तिगत तौर पर स्वीकार किया। 1939 में रायपुर प्रवास पर आये नेहरूजी ने जिला कौसिंल द्वारा प्रकाशित 'उत्थान' मासिक पत्रिका को देखकर उसी समय टिप्पणी लिखी थी कि पत्रिका निकालने का विचार अच्छा है, लेकिन इसकी भाषा सरल होती तो ज्यादा अच्छा होता।

यह सही है कि हिंदी या हिदुस्तानी को राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार किए जाने के पीछे गाँधीजी का व्यावहारिक तर्क था, कि देश में जिस भाषा के बोलने वाले सबसे ज्यादा हों, उसे सीखना बाकी लोगों के लिए भी अपेक्षाकृत आसान होगा। यह बात उनके ध्यान में थी कि ठेठ हिंदीभाषियों के अलावा मराठी और गुजराती भी हिंदी के काफी करीब हैं और अगर हिंदी–उर्दू के समावेश से हिंदुस्तानी बनती है तो उसक प्रयोगकर्ताओं की संख्या बढ़कर काफी ज्यादा हो जाएगी। दूसरी तरफ गांधीजी का अन्य किसी भी भाषा के प्रति कोई दुराग्रह नहीं था। वे दक्षिण भारत का जिक्र करते हुए कहते हैं कि चार भाषाओं का यह बड़ा इलाका अपने आप में एक महाद्वीप है। वे इन भाषाओं पर संस्कृत के प्रभाव से भी परिचित हैं। यही नहीं एक जगह पर वे कहते हैं कि हमें साहित्य से पहले भाषा के मुद्दे पर विचार करना चाहिए। साहित्य तो तमिल और कन्नड़ आदि भाषाओं में हिंदी की अपेक्षा कहीं ज्यादा समृद्ध है। गाँधीजी अंग्रेजी भाषा के भी खिलाफ नहीं थे। वे भारत में भाषा की विविधता की चर्चा करते समय उल्लेख करते है कि दक्षिण अफ्रीका में भी कितनी भाषाएं बोली जाती है। आज जब हम इस बारे में बात कर रहे हैं तो ध्यान आता है कि फिनलैंड, स्वीडन, सिंगापुर, स्विट्जरलैंड जैसे देशों में एक से अधिक भाषाएं अधिकारिक

भाषा के तौर पर मान्य है। ग्रेट ब्रिटेन में वेल्श और स्कॉटिश की नए सिरे से प्राण प्रतिष्ठा हो रही है। और तो और अमेरिका में भी अनेक राज्यों में एक से अधिक भाषाएँ राजकाज की भाषा के रूप में प्रचलित है।

एक दिलचस्प तथ्य हमारे देखने में आता है कि गाँधी ने भाषा के प्रश्न पर बहुत से लोगों से राय–मशविरा किया और इस तरह जनतांत्रिक तरीके से इस विषय पर आम सहमति बनाने की कोशिश की। सन् 1918 में इंदौर में आयोजित हिंदी साहित्य सम्मेलन के पहले उन्होंने देश के बहुत से विद्धानों को एक पत्र लिखकर तीन प्रश्नों पर उनके विचार जानने की कोशिश की । इन मनीषियों में कवि गुरू रवीन्द्रनाथ ठाकुर का भी नाम था। ये तीन सवाल थे–

1. क्या हिंदी विभिन्न प्रदेशों के बीच तथा अन्य राष्ट्रीय कार्यों के लिए उपयुक्त एकमात्र संभव भाषा नहीं है?
2. क्या कांग्रेस के अधिवेशन में मुख्य रूप से हिंदी का ही उपयोग नहीं होना चाहिए?
3. क्या देशी भाषाओं के माध्यम से उच्च शिक्षा देना सम्भव नहीं है और क्या प्राइमरी स्कूल के बाद हिंदी को दूसरी भाषा के रूप में नहीं बढ़ाना चाहिए?

इसमें दूसरा सवाल कांग्रेस के संदर्भ में है। कहना न होगा कि गांधीजी के आगमन के बाद ही पाटह्व का जनाधार बढ़ा, वह अंग्रेजीदां वकीलों के सीमित दायरे से निकल कर देश के गांव–गांव तक फैली और उसमें हिंदी ने निश्चित ही अहम भूमिका निभाई।

स्वीकृत

विशेष आर्थिक क्षेत्रों एवं निर्यात आधारित ईकाइयों में उपयोगी प्लास्टिक या प्लास्टिक की थैलियों का निर्माण

स्वीकृत

विनिर्माण स्तर पर सामग्रीयों को लपेटने हेतु या निर्माण के एकीकृत अंग के रूप में ऐसी प्लास्टिक सामग्री जो न्यूनतम 20 % पुर्ननिर्माण प्लास्टिक से बनी है एवं 50 माइक्रॉन से अधिक मोटाई की है। यदि थर्मोकॉल का उपयोग विनिर्माण स्तर पर सामग्री को लपेटने के लिए किया जाए। (ई.पी.आर. के अंतर्गत जिनमें निर्माणकर्ता का विवरण, कोड नंबर सहित प्लास्टिक का प्रकार एवं पुन: खरीदी का उल्लेख हो)

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति,
भिलाई - दुर्ग

संविधान सभा में गाँधी की हिंदी

कनक तिवारी

भारतीय राजनीतिक मंच पर महात्मा गाँधी के दक्षिण अफ्रीका से आने तक भारत के स्वतंत्रता आंदोलन की अभिव्यक्ति की भाषा अंग्रेजी ही बनी बैठी थी। राजनीति के परिदृश्य पर महात्मा गाँधी के आने के बाद भाषा के सवाल को बहुमत की आकांक्षा, गरीब की भूख और देश के अब तक के आहत अभियान के साथ जोड़ा गया। बापू की सीधी सादी, साफ सुधरी और दो टूक समझाइश थी कि इस देश के अवाम को आजादी की जद्दोहद की एक–एक इबारत को बराबरी के आधार पर लिखने, पढ़ने, समझने का अधिकार है। गांधी देश के लोगों के बीच उस भाषा को संपर्क सूत्र बनाना चाहते थे, जिसे सबसे ज्यादा लोग खुद ब खुद समझते, बोलते और लिखते हैं। मोहनदास करमचंद गाँधी खुद एक ऐसी खुली किताब रहे हैं, जिसके जीवन के हर फड़फड़ाते पृष्ठ पर उकेरी गई इबारत अपने एक–एक शब्द के अर्थ के अतीत को समझती है। वह समकालीनता को बुनती है और भविष्य के प्रतिमान गढ़ती है। जिस तरह गाँधी की 'गांव' की परिभाषा में भारत के भविष्य के गांव हैं, केवल वे गांव नहीं हैं, जिन्हें अंबेडकर ने तल्ख होकर अज्ञान, शिक्षा और गरीबी के नाबदान कहा था, उसी तरह गाँधी की भाषा की परिभाषा भी किसी ठहरी हुई अभिव्यक्ति की ठठरी नहीं हो सकती।

दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने के पहले ही गाँधी ने 'हिंद स्वराज्य' में भारत के भविष्य का खाका खींचा था। उसमें उन्होंने सभी संकेत छितराए थे। भाषा की गाँधी की समझ गैर हिंदी भाषाओं को विश्वास में लेकर हिंदी–उर्दू के सहकार से ऐसी हिंदुस्तानी रचने से थी जिससे वे एक नया भारत बनाने की समझाइश दे सकें। यह एक साथ देश, गाँधी और संविधान का दुर्भाग्य है कि गाँधी की भाषा–नीति को इस देश के सांस्कृतिक समास का सरोकार समझने के बदले एक राजनीतिक प्रयोजन समझा गया। महात्मा गाँधी ने कहा–अपनी मातृभाषा के मुकाबले हमारे अंग्रेजी प्रेमी पढ़ें लिखे हिंदुस्तानियों और जनता की बीच तक गहरी खाई अंग्रेजी ने पैदा कर दी है। गाँधी ने क्षेत्रीय भाषाओं में आजादी का आंदोलन चलाने और अंतर्प्रदेशीय संपर्क के लिए हिंदी और उर्दू को मिलाकर हिंदुस्तानी के उपयोग पर बल दिया। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस ने 1925 में हिंदुस्तानी के व्यवहार के पक्ष में प्रस्ताव भी पारित किया। लेकिन कांग्रेस ने उस पर खुद आचरण नहीं किया। 1942 में गाँधी ने वर्धा में 'हिदुस्तानी प्रचार सभा' की स्थापना की, लेकिन अंग्रेजी के ज्ञान का आधुनिक संसार को पढ़ने समझने के नाम पर विरोध भी नहीं किया।

संविधान सभा की बैठक 9 दिसम्बर 1946 को शुरू हुई। दूसरे ही दिन जब सदन की कार्यवाही की प्रक्रिया निर्धारित करने के लिए कमेटी के गठन की बात आई, उत्तप्रदेश के आर. वी. धुलेकर ने हिंदी में भाषण देते हुए आग्रह किया कि प्रक्रिया समिति की कार्यवाही हिंदुस्तानी में की जाए। सदस्यों की टोकाटाकी के बीच उन्होंने तैश में यहां तक कह दिया कि जिन सदस्यों को हिंदुस्तानी नहीं आती, उन्हें हिंदुस्तान में रहने और संविधान सभा में बैठने का अधिकार नहीं मिलना चाहिए। अध्यक्ष सच्चिदानंद सिन्हा ने चक्रवर्ती राजगोपालाचारी के नाम का उल्लेख करते हुए हिंदी में कहा था कि उन्हें हिंदुस्तानी नहीं आती। क्या गाँधी के समधी को वाकई हिंदुस्तानी नहीं आती थी या हिंदुस्तानी सीखने में उन्हें कोई गुरेज था? यह दिलचस्प संयोग है कि गाँधी के पुत्र और राजगोपालाचारी के दामाद देवदास गाँधी 'हिदुस्तान टाइम्स' के संपादक बनाए गए थे। हिंदुस्तानी नहीं जानने वाले चक्रवर्ती राजगोपालाचारी हिंदुस्तान के पहले गवर्नर जनरल बनें।

धुलेकर ने कहा, 'मैं निवेदन करता हूं कि स्वामी रामदास ने हिंदी में लिखा, तुलसीदास ने हिंदी में लिखा, और आधुनिक काल के संत स्वामी दयानंद ने हिंदी में लिखा। वे गुजराती थे किंतु लिखते थे हिंदी में। वे हिंदी में क्यों लिखते थे? इस कारण कि इस देश की राष्ट्र–भाषा हिंदी थी। इसके अतिरिक्त मैं निवेदन करता हूं कि राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने जब कांग्रेस में प्रवेश किया तो उन्होंने तुरंत ही अंग्रेजी भाषा छोड़ दी और हिंदी में बोलने लगे। उन्होंने अंग्रेजी में लिखने का प्रयास नहीं किया। उन्होंने अपनी जीवनी भी हिंदी में लिखी और उसका महादेव देसाई ने अनुवाद कराया।

कल मेरे मित्र मि. हिफजूर रहमान ने महात्मा गाँधी का नाम लेकर अपील की थी कि हम हिंदुस्तानी को देश की राजभाषा बनाएं और उसे फारसी और देवनागरी लिपियों में लिखें। मेरे विचार से वे इतिहास को भूल गए हैं। यदि मैं हिंदुस्तानी का विरोध करता हूं, तो इस

कारण विरोध नहीं करता हूं कि मुझे इन लोगों से प्रेम नहीं है। मैं उसका विरोध इनसे प्रेम, सच्चा प्रेम, भाई–भाई का प्रेम होने के कारण ही करता हूं। यदि आज कोई व्यक्ति हिंदुस्तानी के पक्ष में बोले तो उसकी बातों को कोई नहीं सुनेगा।

जवाहरलाल नेहरू ने कहा, हमारे राष्ट्रपिता बड़ें बुद्धिमान थे। उन्होंने हमारे राष्ट्र भविष्य को प्रभावित करने वाले सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार किया कि यह भाषा लोगों की भाषा होनी चाहिए और केवल विद्वान लोगों की भाषा नहीं होनी चाहिए। इसका अर्थ यह नहीं है कि विद्वान लोगों की भाषा मूल्यवान अथवा आदरणीय नहीं है। हमें विद्वता की, कवियों की, महान लेखकों तथा इस प्रकार के अन्य लोगों की आवश्यकता है। किंतु आधुनिक युग में अतीत काल से भी अधिक सार इस तथ्य में है कि यदि कोई भाषा लोगों की भाषा से दूर हुई है तो वह महान नहीं हो सकती। वास्तव में जब विद्वानों का जनसाधारण से यथोचित संबंध स्थापित होता है तभी कोई भाषा मान तथा सशक्त होती है। भारत में हमें दो भाषाओं के उदाहरण मिलते हैं, यद्यपि मैं इन भाषाओं से अनभिज्ञ हूं। रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने यह संबंध बंगला में स्थापित किया और इस प्रकार उस भाषा को पहले से कहीं अधिक महान बना दिया। गाँधीजी ने गुजराती भाषा पर इससे भी अधिक प्रभाव डाला। इस विषय के संबंध में जिस अंतिम बात की ओर राष्ट्रपिता ने हमारा ध्यान आकर्षित किया था वह यह है कि यह भाषा भारत की सम्यक, संस्कृति की प्रतीक होनी चाहिए। जहां तक हिंदी भाषा का संबंध है, उसमें उस सम्यक संस्कृति का प्रतिनिधित्व होना चाहिए जो उत्तर–भारत में विकसित हुई, जहां मुख्यतः हिंदी भाषा का ही बोलबाला रहा। उसमें उस सम्यक संस्कृति का भी प्रतिनिधित्व होना चाहिए, जो उसे भारत के अन्य भागों से प्राप्त हुई। इसी कारण राष्ट्रपिता ने हिंदुस्तानी शब्द प्रयोग किया।

गाँधीजी ने जिन बातों को बहुत ज्यादा अपनाया था और जो चंद बातें उनके नजदीक बहुत ही अहम और जरूरी थीं, उनमें आजादी के साथ भाषा और जुबान का मसला भी। और जब शुरू में हिंदुस्तान में जुबान का मसला आया तो उनको हिंदी के साहित्य सम्मेलन ने अपना मेम्बर बना लिया और उन्होंने हिंदी को आगे बढ़ाने की कोशिश की। लेकिन जब उन्होंने यह सुना और आहिस्ता–आहिस्ता यह देखा कि हिंदी से वह मुराद नहीं है, जो कि महात्मा गाँधी चाहते थे बल्कि उनको अलग जुबान दिखी, जो कि संस्कृताइज्ड़ हैं और उसको ज्यादा से ज्यादा संस्कृताइज्ड करने की कोशिश की जाती है और उसी जुबान को हिंदी कहा जाता है तो उन्होंने उसके साथ इख्तलाफ किया और उसके बाद उन्होंने इस बात का ऐलान भी किया और कहा कि मैं हिंदी का मतलब हिंदुस्तानी देखता हूँ और इसीलिए उन्होंने हिंदी अथवा हिंदुस्तानी का प्रचार भी किया और जब कभी इस मामले पर उनके साथ बात हुई तो उन्होंने कहा कि मैं हिंदी का मतलब उस जुबान से लेता हूँ, जो कि उत्तरी हिंदुस्तान में बोली जाती है और जिसको कि हिंदु मुसलमान, जो तमाम हिंदुस्तान में बसने वाले हैं, बोलते और समझते हैं।

शक्ति दो प्रकार की होती है !

एक दंड के डर से उत्पन्न होती है और एक प्यार से

प्यार की शक्ति हमेशा दंड के डर की शक्ति से

हजार गुना ज्यादा प्रभावी होती है।

महात्मा गाँधी

गाँधी ने ही राष्ट्रभाषा के रुप में हिंदी को पहचाना

डॉ. परमानंद पांचाल

महात्मा गाँधी ही ऐसे पहले राष्ट्रनेता थे, जिन्होंने विदेशी सत्ता के विरूद्ध संघर्ष के लिए पूरे देश के लोगों का आह्वान किया और उनमें परस्पर संवाद के लिए एक राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की पहचान की। उन्होंने देखा कि किसी विदेशी भाषा के माध्यम से इस देश की सामान्य जनता को नहीं जोड़ा जा सकता। उसके लिए जनता की भाषा की आवश्यकता होगी। दक्षिण अफ्रिका से 1915 में भारत लौटने पर उन्होंने पूरे भारत का दौरा किया और देखा कि इस विशाल देश में अनेक भाषाएं बोलने वाले लोग रहते हैं। वह बहुभाषी देश है। यहां कई भाषाएं समृद्ध भाषाएं हैं, किंतु वे एक सीमित क्षेत्र में ही बोली और समझी जाती है। उन्होंने पाया कि हिंदी ही एकमात्र ऐसी भाषा जो देश के अधिकांश क्षेत्रों में अधिकतर लोगों द्वारा बोली और समझी जाती है। इसीलिए उन्होंने राष्ट्र की एकता के लिए राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी की पहचान की और इसे स्वतंत्रता संघर्ष का माध्यम बनाया। उन्होंने कहा था कि 'समूचे हिंदुस्तान के साथ व्यवहार करने के लिए हमको भारतीय भाषाओं में एक ऐसी भाषा की जरूरत है, जिसे आज ज्यादा से ज्यादा तादाद में लोग जानते और समझते हों और बाकी लोग इसे झट से सींख सकें। इसमें शक नहीं हिंदी ही ऐसी भाषा है।

उनके विचार में हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा हो सकती हैं, क्योंकि राष्ट्रभाषा पद पर आरूढ़ होने के लिए यह आवश्यक है कि सर्वसाधारण उस भाषा को आसानी से समझें तथा सीख सकें और वे गुण सिर्फ हिंदी में ही हैं। इस प्रकार गाँधीजी ही ऐसे पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने हिंदी को ' राष्ट्रभाषा' कहा और इसके प्रचार–प्रसार पर बल दिया।

भड़ौच में आयोजित दूसरी शिक्षा परिषद् के अध्यक्ष पद से बोलते हुए 1917 में महात्मा गाँधी ने किसी भाषा में राष्ट्रभाषा होने के लिए पांच गुणों की आवश्यकता बताई वे निम्न प्रकार हैं :–

1. वह भाषा सरकारी कर्मचारियों के लिए सरल होनी चाहिए।
2. उस भाषा के द्वारा भारत का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक कामकाज किया जा सके।
3. उस भाषा को ज्यादातर लोग बोलते हों।
4. वह भाषा राष्ट्र के लिए आसान होना चाहिए।
5. उस भाषा का विचार करते समय क्षणिक या अस्थायी स्थिति पर जोर न दिया जाए।

गाँधीजी ने कहा कि अंग्रेजी भाषा में उनमें से एक भी लक्षण नहीं हैं। तब कौन–सी भाषा उन 5 लक्षणों से युक्त है? यह माने बिना काम चल ही नहीं सकता कि हिंदी भाषा में ये सारे लक्षण मौजूद हैं। उन्होंने आगे चलकर अपने भाषण के अंत में कहा–' इस तरह हिंदी भाषा राष्ट्रभाषा बन चुकी है। हमने वर्षों पहले उसका राष्ट्रभाषा के रूप में उपयोग किया है।'

गाँधीजी ने अपने अनेक भाषणों में 'राष्ट्रभाषा' का उल्लेख किया है। अपने निजी हिंदी में लिखे गए कुल 630 हिंदी लेखों में से उन्होंने सबसे ज्यादा लेख हिंदी (हिंदुस्तानी) के बारे में लिखे हैं, जिनकी संख्या 24 है। जब आप भारत की राष्ट्रभाषा अर्थात हिंदी सीख लेंगे तो आपके सामने हिंदी में भाषण करने में मुझे बहुत खुशी होगी। जब तक आप हिंदी नहीं सीखते तब तक शेष भारत से अपने को बिल्कुल अलग रखेंगे।

महात्मा गाँधी हिंदी को एक सीमित क्षेत्र की भाषा बनाए रखने के पक्ष में नहीं थे। वे इसे पूरे देश की भाषा और राष्ट्र को जोड़ने वाली भाषा के रूप में विकसित करने के पक्ष में थे। हिंदी साहित्य सम्मेलन इंदौर अधिवेशन में अध्यक्ष पद से अपने भाषण में उन्होंने कहा था–यदि हिंदी भाषा की भूमि सिर्फ उत्तर प्रांत होगी तो साहित्य का प्रदेश संकुचित रहेगा। हिंदी भाषा राष्ट्रीय भाषा होगी तो साहित्य का विस्तार भी राष्ट्रीय होगा। जैसे भाषक, जैसी भाषा। अंत में उन्होंने कहा था–मेरा नम्र लेकिन दृढ़ अभिप्राय है कि जब तक हम हिंदी भाषा को राष्ट्रीय और अपनी प्रांतीय भाषाओं को उनका योग्य स्थान नहीं देंगे, तब तक स्वराज की सब बातें निरर्थक है।

सन् 1935 में कानपुर में कांग्रेस अधिवेशन में उसके विधान में एक संशोधन किया गया कि अखिल भारतीय कार्यवाही हिंदुस्तानी में चलाई जाएगी। यदि कोई सदस्य हिंदुस्तानी न बोल सकें तो प्रातीय भाषा या अंग्रेजी का प्रयोग कर लें। गाँधीजी अंग्रेजी भाषा के शत्रु थे। वह इसे अततः सांस्कृतिक और अनंत भाषाई मित्र मानने के लिए तैयार थे, किंतु अपनी भाषा की उपेक्षा उसके प्रभुत्व को मानने से इंकार करते थे। वे कहते थे, यदि विदेशी भाषाएं और संस्कृति मेरे घर को सुगंधित करें तो मैं विदेशी समीर के लिए अपनी खिड़कियां खोल दूंगा। किंतु यदि वे तूफान बनकर मेरे घर को उखाड़ना चाहें तो मैं चट्टान की तरह खड़ा हो जाऊँगा। मैं अंग्रेजी शिक्षा पद्धति और शिक्षा के माध्यम के रूप में अंग्रेजी के प्रयोग को राष्ट्र के हित में नहीं मानते थे।

भारत के स्वतंत्र होने पर बी.बी.सी. के संवाददाता ने जब गाँधीजी से अपने विचार व्यक्त करने के लिए अंग्रेजी में अनुरोध किया तो गांधीजी ने उत्तर में कहा–'गाँधी अंग्रेजी भूल गया हैं।' यह था गाँधीजी का स्वदेश और स्वदेशी भाषा के प्रति प्रेम।

गाँधीजी बहुत सरल हिंदी के पक्षधर थे, जिसे वे 'हिंदुस्तानी' कहना पसंद करते थे। हिंदु–मुस्लिम एकता को सुदृढ़ करना चाहते थे, इसलिए उन्होंने हिंदी को परिभाषित करते हुए कहा था–हिंदी उस भाषा का नाम है, जिसे हिंदू और मुसलमान कुदरती तौर पर बगैर प्रयत्न के बोलते हैं। हिंदुस्तानी और उर्दू में कोई अंतर नहीं है। देवनागरी में लिखी जाने पर वह हिंदी और फारसी लिपि में लिखी जाने वह उर्दू हो जाती है। उन्होंने कहा था हिदुस्तानी जो दोनों (हिंदी–उर्दू) के बीच की भाषा है, आम भाषा कुल हिंदी की भाषा मान ली जाए।

गाँधीजी हिंदुस्तानी के पक्षधर तो थे, किंतु वे भारत की सभी भाषाओं के लिए एक समान लिपि अपनाए जाने पर जोर देते थे। उनका कहना था कि हम जो राष्ट्रीय एकता प्राप्त करना चाहते हैं, उसकी खातिर देवनागरी को सामान्य लिपि स्वीकार करना आवश्यक है। इसमें कोई कठिनाई नहीं है। बात सिर्फ यह है कि हम अपनी प्रांतीय और संकीर्णता छोड़ दें। तमिल और उर्दू लिपियां, मैं दोनों को जानता हूं, लेकिन मातृभूमि की सेंवा में जिसके लिए मैंने अपना सारा जीवन अर्पण कर दिया है, मुझे सिखाया गया है कि हमारे देश के लोगों पर जो अनावश्यक बोझ हैं, उनसे मुक्त करने का है। हमें प्रयत्न करना चाहिए। तमाम लिपियों को जानने का बोझ अनावश्यक है और उससे आसानी से बचा जा सकता है।

स्वीकृत

बहुस्तरीय पुन: उपयोगी (रिसाईकेबल) प्लास्टिक

चिप्स के पैकेट, शैम्पू के सैशे, ऑयल पैकेट, चॉकलेट पैकेट इत्यादि

नगर राजभाषा कार्यान्वयन समिति,
भिलाई - दुर्ग

राष्ट्रीय आंदोलन और गाँधी : हिंदी की भूमिका

डॉ. महेन्द्र मधुकर

जैसे सुस्वादु भोजन के बाद मधु परोसा जाता है वैसे ही भाई वाजपेयी जी ने मुझे आंमत्रित किया है। ' राष्ट्रीय आंदोलन हिंदी और गाँधी' विषय राष्ट्रीय चेतना की ओर हमें ले जाता है। राष्ट्रीय आंदोलन के सूत्रधार के रूप में महात्मा गाँधी का स्मरण एक दिव्य अनुभव है। यह स्मृति–तर्पण है। नवधा शक्ति में स्मरण को भी शक्ति का एक प्रकार गिना गया है। गाँधी को स्मरण करते हुए ऐसा लगता है, जैसे राष्ट्र की संपूर्ण चेतना एकत्र होकर साहित्य में अंकुरित और फलीभूत हुई और उसने सभी दिशाओं तथा भारतीय सोच को प्रभावित किया।

वस्तुतः राष्ट्रीयता है क्या? राष्ट्र केवल भौगोलिक दृष्टि से नांपी हुई जमीन या उसका हिस्सा नहीं है। राष्ट्र तो विविध सांस्कृतिक मूल्यों के घटक तत्वों से बना है। वैसे कोई फूलों का गुच्छा हो या कोई बाग हो, जिसमें तरह–तरह के पेड़–पौधे, पक्षी, लताएं और क्यारियाँ होती है पर उनमें एक अंतसंबंध जरूर होता है। वहां एक अंतर्वर्ती सूत्र काम करता रहता है जो पूरे बगीचे को एक साथ पिरोए रहा है। गाँधी ने इस सत्य को समझा था, वे जनमानस को चालित करने और झकझोड़ने की भी शक्ति रखते थे। वे जब लिखते थे तो सारा देश उसे बांचता था। गाँधीजी इस अर्थ में वैदिक मंत्रद्रष्टा ऋषि की तरह दिखाई देते हैं, जो केवल मनुष्य की ही मंगलकामना नहीं करता बल्कि तमाम जीव–जंतुओं और आसपास फैले हुए पर्यावरण की भी चिंता करते थे।

इस दृष्टि में गाँधीजी रचयिता थे। शास्त्र में रचयिता को कवि मनीषी परिभूःस्वयंभू कहा गया है। इस अपार विश्व को कवि प्रजापति की तरह जैसा चाहता है, वैसा बदल देता है– अपारे काव्य संसारे कविदेव प्रजापतिः। यथास्मै रोचते विश्व तथेदं परिवर्तने। रचयिता अपनी दृष्टि को केवल रचता नहीं है, वह अपनी रचना में रूचि भी लेता है। इस अर्थ में गाँधीजी पथ–निर्माता या पथप्रदर्शक ही नहीं है बल्कि वे पथ पर साथ भी चलते हैं, सहयोग करते हैं और हमारी आत्मा को अपनी आत्मा के तल पर लाकर हमसे बातचीत भी करते हैं।

मुझे प्रतीत होता है कि आजादी की लड़ाई के प्रयत्न भारत में गाँधीजी के पहले भी हुए हैं, पर उस वक्त भारतीयों के मन में एक ही जज्बा–था–गुलामी से पीछा छुड़ाना और किसी भी तरह आजादी प्राप्त करना। वह लड़ाई शस्त्रबल पर टिकी हुई थी इसलिए हम पराजित हुए। गाँधीजी ने शस्त्रबल की जगह आत्मबल को सामने रखा। वे जानते थे कि शस्त्र को काटा जा सकता है, आत्मतत्व को नहीं। गाँधीजी ने हमें हमारे प्राणों की चैतन्य धरा से परिचित कराया। उस समय भारत और भारतीय में फर्क नहीं रह गया। भारतीयों को लगा कि यह भारत एक विराट महिमामयी मूर्ति है–भारतमाता है, हिमालय इसका गर्वोन्नत सिर है, पहाड़ियाँ इसकी भुजाएं हैं। नदियां इसमें करूणा तल की तरह बहती है। हरे–भरे खेत इसके दुपट्टे और दुशाले हैं, और उसके पैरों में लोटता हुआ समुद्र इसकी उच्चता और गंभीरता का साक्षी है।

सच पूछिए तो महात्मा गाँधी ने राष्ट्रभाषा हिंदी को राष्ट्रीयता की इस लड़ाई का एक पुरजोर साधन माना। वे जान गए थे कि भाषा मनुष्य का सबसे बड़ा अस्त्र और उसकी सबसे बड़ी शक्ति है। उनकी भाषा अत्यंत पारदर्शी थी, और वह सीधे जनता के दिलों में उतरती थी। उन्होंने राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को एक सम्मानित दर्जा दिया।

गाँधी की विशेषता इस बात में भी है कि उन्होंने तत्कालीन हिंदी साहित्य को अपने क्रियाकलापों में और अपनी विचारधाराओं से उद्वेलित किया। उन्होंने कवियों और लेखकों को लिखने के लिए विषय दिए, ठीक–ठीक ढंग से उन्होंने मनुष्य और समाज की चिंता की। आज क्या स्थिति है? सत्ता पर बैठे हुए लोग सारा सुख पाने के बाद गांवों की ओर जाना चाहते हैं, गांवों का विकास चाहते हैं पर गाँधीजी ने गांवों से ही अपनी शुरूआत की है। वे जानते थे कि भारत माता गांवों में रहती है। उसके वस्त्र फटे है, केश लटियाए हैं, वह भूखी हैं, उसके बच्चे भूखे और नग्नतन है। कवि सुमित्रानंदन पंत की ये पंक्तियां ध्यान देने योग्य हैं–

सफल आज उसका तप संयम,
पिला अहिंसा स्तन्य सुधोषम,
हस्ती जन मन भय, भव तम भ्रम,
जग जननी, जीवन विकासिनी।

पंतजी ने गाँधी को भावी संस्कृति का कर्णधार माना है । उन्होंने बापू के प्रति शीर्षक कविता में गाँधी दर्शन को प्रकट करते हुए लिखा है–

तुम मांसहीन, तुम रक्तहीन, है अस्थिशेष तुम अस्थिहीन,
तुम शुद्ध बुद्ध आत्मा केवल, है चिर पुराण, हे चिर नवीन।
तुम पूर्ण इकाई जीवन की, जिसमें संसार भव–शून्य लीन,
आधार अमर, होगी जिस पर, भावी की संस्कृति समासीन।
जड़ता, हिंसा, स्पर्धा में भर
चेतना, अहिंसा, नम्र ओज,
पशुता का पंकज बना दिया
तुमने मानवता का सरोज।

गाँधीजी ने इसी मानवीय दुःख और त्रासदी से अपनी लड़ाई की शुरूआत की। उन्होंने मनुष्य की पीड़ा को इतना महत्व दिया कि बंदूकों की गोलियां बेअसर हो गई। उनकी अहिंसा इतनी शक्तिशाली थी कि हिंसा नतमस्तक हो गई।

गाँधीजी ने जिस राष्ट्रीयता की बात की, उसका आधार अखंडता में है। हम सब इस अखंडता का अनुभव करते हैं तब इसमें विविध सांस्कृतिक मूल्य होते है। नदी की प्रवाहमान धारा की तरह संस्कृतियां चलती रहती है और उनका विकास होता रहता है। वे निरन्तर मनुष्य समाज का निर्माण करती है। उसक रहन–सहन का ढांचा तय करती है। हमारे देश की संस्कृति कृषि प्रधान संस्कृति है। यह कृषि प्रधान संस्कृति है क्या? इसमें आकर्षण और जुड़ाव है।

असल में भारतीय चिंताधारा का विकास भी संघर्ष से ही हुआ है। क्या रामायण, क्या महाभारत, सभी इसी संघर्षवृति को व्यक्त करते हैं। इसलिए महात्मा गांधी ने स्वतंत्रता–आंदोलन में जनता की संघर्षशक्ति और आत्मशक्ति को जगाने का काम किया। दूसरे, उन्होंने स्त्री–शक्ति के जागरण की बात की। तीसरे, हरिजनों का पक्ष लेकर उन्होंने दलित चेतना एवं उसके उद्धार का यत्न किया और चौथा है–'सवधर्म समभाव'। पांचवा है–देसी वस्तुओं के प्रति प्रेम। यही बात छायावादी काव्य में सर्वात्मवाद के रूप में दिखाई देती है। गाँधीजी भी इसे सर्व–चेतनावाद के रूप में लेते हैं। गाँधी जी अपने चिंतन को आत्ममंथन का प्रसाद बताते है। गाँधी जी मानते थे कि कला के दो रूप होते है – अंतरकला और वाह्यकला। वाह्यकला जब तक अंतरकला नहीं होती तब तक उसको महत्व प्राप्त नहीं होता।

भारत का यह स्वतंत्रता आंदोलन भारत के लिए संक्रमणकाल रहा है। उस संक्रमणकाल में परिस्थितियों की जबर्दस्त, जद्दोजहद दिखाई देती है। रामनरेश त्रिपाठी का 'पथिक' शीर्षक खण्डकाव्य दिनकर की 'बापू' शीर्षक कविता पुस्तक के साथ–साथ भवानी प्रसाद मिश्र, बच्चन, मुक्तिबोध आदि ने बापू से प्रेरणा ली। गाँधीजी ने हिंदी को राष्ट्रीय भाव के रूप में स्थापित किया था। भाषा का यह सम्मान राष्ट्र का सम्मान होता है। आज परिस्थितियां भले ही विपरीत हो पर भारत की जीवन शक्ति कभी कम नहीं हो सकती। रवीन्द्रनाथ ठाकुर का एक छन्द है कि यह लोहार जो लोहा पीट रहा है और उससे ठन–ठन की आवाजें निकल रही हैं, इससे चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है। कल होकर इन्हीं लोहे के तारों से कसे जाऐंगें। सितार के तार और इन्हीं से निकलेगी मीठी झंकार। इसी आशावादिता से राष्ट्रभाषा हिंदी का राष्ट्रीय सम्मान होना चाहिए।

नराकास भिलाई – दुर्ग की 49वीं छमाही बैठक सह पुरस्कार वितरण की झलकियां

‘‘नराकास मूल्यांकन उप समिति भिलाई–दुर्ग द्व

ारा सदस्य संस्थानों में निरीक्षण की झलकियां''

संयुक्त (नराकास संस्थान एवं भिलाई इस्पात संयंत्र)
क्विज चैम्पियन टॉफी 2019 की झलकियां

गाँधी और हिंदी

डॉ. सी. जयशंकर बाबू

भारत से अफ्रीका के विभिन्न प्रातों में रोजी–रोटी के लिए जाने वाले असंख्य भारतीय नागरिकों में एक ऐसे अधिवक्ता भी शामिल थे जो उन तमाम गिरमिटियों के हितों की रक्षा की वकालत करने में बड़े निष्ठावान एव कर्मठ साबित हुए और आगे चलकर पूरे भारतवासियों की तरफदारी लेकर 'अंग्रेजों भारत छोड़ों' का नारा देते हुए हिंदुस्तान की आजादी की लड़ाई के अग्रनेता बन गए थे। वे और कोई नहीं स्वयं मोहनदास करमचंद गाँधी थे। आज गाँधीजी के नाम से दुनिया की लगभग एक चौथाई आबादी परिचित है, भारत की लगभग अधिकांश आबादी सुपरिचित है।

मातृभाषा का महत्व–

गाँधीजी का यह मानना सही है कि व्यक्ति के जीवन में मातृभाषा का विशिष्ट महत्व होता हैं, क्योंकि बालक के प्रारंभिक विचारों को बनाने में मातृभाषा का बड़ा हाथ होता है। वह अपने सांस्कृतिक वातावरण से भिन्न, किसी ऐसे नए विचार को ग्रहण करने में असमर्थ होगा, जिसकी अभिव्यक्ति उसकी मातृभाषा में नहीं हो सकती। मनोवैज्ञानिक तथा सांस्कृतिक कारणों से शिक्षा प्रसार के लिए मातृभाषा को ही अपनाना उचित होगा। शैक्षणिक दृष्टि से तो मातृभाषा की अपेक्षा बिल्कुल नहीं की जानी चाहिए। जिस भाषा का व्यवहार बालक अपने घर पर करता हैं, उसमें शिक्षा देने से वह सरलता पूर्वक ग्रहण कर सकता है। गाँधीजी ने कहा था–मनुष्य के मानसिक विकास के लिए मातृभाषा उतनी ही आवश्यक है, जितनी कि बच्चे के शारीरिक विकास के लिए माता का दूध। बालक पहला पाठ अपनी माता से ही पढ़ता है, इसलिए उनके मानसिक विकास के लिए उसके उपर मातृभाषा के अतिरिक्त कोई दूसरी भाषा लादना, मैं मातृभाषा के विरूद्ध पाप समझता हूं। कई वैज्ञानिक एवं शिक्षाविद् भी गाँधीजी के इन विचारों से शत–प्रतिशत सहमत है। भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए.पी.जे. अब्दुल कलाम बापूजी के इन्हीं विचारों से सहमत होकर अक्सर यही कहा करते हैं कि बच्चों को कम–से–कम प्राथमिक स्तर की शिक्षा एवं विज्ञान तथा गणित की शिक्षा मातृभाषा के माध्यम से दी जानी चाहिए और यदि हम ऐसा करेंगे कई मौलिक प्रतिभाएं विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विकसित हो सकती है।

मातृभाषा के बाद देश के बहुभाषाई परिवेश में भिन्न भाषा–भाषियों के बीच संपर्क माध्यम के रूप में एक दूसरी सामान्य भाषा को होना भी जरूरी है, इस रूप में गाँधीजी हिंदी को उचित दर्जा का वकालत करते हुए उसकी राष्ट्रभाषा के रूप में महत्वपूर्ण भूमिका होने की बात कही थी और राष्ट्रभाषा प्रचार भारत में कोने–कोने में होना सुनिश्चत करने के लिए गाँधीजी ने बड़े अभियान का नेतृत्व किया था। इसी का परिणाम है कि दक्षिण भारत एवं पूर्वोत्तर भारत में हिंदी का व्यापक प्रचार हुआ।

दक्षिण भारत में हिंदी की गंगोत्री–

दक्षिण भारत की संज्ञा भारत से दक्षिणी भू–भाग को दी जाती है, जिसमे केरल, कर्नाटक, आंध्र एवं तमिलनाडु राज्य तथा संघशासित प्रदेश पुदुच्चेरी शामिल है। केरल में मलयालम कर्नाटक में कन्नड़ आंध्र में तेलुगु और तमिलनाडु तथा पुदुच्चेरी में तमिल अधिक प्रचलित भाषाएं हैं। ये चारों द्रविड़ परिवार की भाषाएं मानी जाती हैं। दक्षिण की इन चारों भाषाओं की अपनी–अपनी विशिष्ट लिपियां है। सुसमृद्ध शब्द भण्डार व्याकरण तथा समृद्ध साहित्यिक परंपरा भी है। अपने–अपने प्रदेश विशेष की भाषा के प्रति लगाव के बावजूद अन्य प्रदेशों के भाषाओं के प्रति यहां की जनता में निस्संदेह आत्मीयता की भावना है। अतः यह बात स्वतः स्पष्ट है कि दक्षिण भारत भाषाई सद्भावना के लिए उर्वर भूमि है।

धार्मिक व्यापारिक और राजनीतिक कारणों से उत्तर भारत के लोगों का दक्षिण में आने–जाने की परंपरा शुरू होने के साथ ही दक्षिण में हिंदी का प्रवेश हुआ था। यहां के धार्मिक व्यापारिक केद्रों में हिंदीत्तर भाषियों के साथ व्यवहार के माध्यम के रूप में एक बोली के रूप में हिंदी का धीरे–धीरे प्रचलन हुआ। दक्षिणी भू–भाग पर मुसलमान शासकों के आगमन और इस प्रदेश पर उनके शासन के दौर में एक भाषा विशेष रूप में दक्खिनी का प्रचलन चौदहवीं से अठारहवीं सदी के बीच हुआ, जिसे 'दक्खिनी हिंदी' की संज्ञा भी दी जाती है। बहमनी

कुतुबशाही आदिलशाही आदि शाही वंशों के शासको के दौर बीजापुर, गोलकोंडा, गुलबर्गा, बीदर आदि प्रदेशों में दक्खिनी हिंदी का चतुर्दिक विकास हुआ। दक्खिनी हिंदी का विकास एक जनभाषा के रूप में हुआ था। इसमें उत्तर दक्षिण की कई बोलियों के शब्द जुड़ जाने से यह आम आदमी की भाषा के रूप में प्रचलित हुई। हैदर अली और टीपू के शासनकाल में कर्नाटक के मैसूर रियासत में अर्काट नवाबों की शासनावधि में तमिलनाडु के तंजाबूर प्रांत में आंध्र के कुछ सीमावर्ती प्रांतों में मराठी शासकों के द्वारा भी यह काफी प्रचलित हुई। आगे चलकर दक्खिनी हिंदी में प्रचुर मात्रा में साहित्य का सृजन भी हुआ है।

गाँधीजी ने दक्षिण भारत में हिंदी के व्यवस्थित प्रचार के लिए एक भाषाई आंदोलन का सूत्रपात किया था। गाँधीजी की संकल्पनिष्ठा और कई समर्पित कार्यकताओं की कर्तव्यनिष्ठा से हिंदी की समय धारा दक्षिण के गांव–गांव में बहने लगी थी। हिंदी आज दक्षिण की गंगोत्री है। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी स्वाधीनता आंदोलन के सारथी ही नहीं, बल्कि एक समर्पित, सजग व सशक्त पत्रकार थे। उन्होंने अपनी वाणी व लेखनी से ही नहीं, मगर अपने रचनात्मक कार्यों से भी हिंदी की तरफदारी करते हुए उसके फैलाव के लिए अथक एवं सफल प्रयास किया। गाँधीजी के रचनात्मक कार्यक्रमों में राष्ट्रभाषा प्रचार एक अभिन्न अंग था।

हिंदी को प्रतिष्ठित करने हेतु गाँधीजी के निष्ठापूर्ण प्रयास–

हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में सभापति के हैसियत से लोगों को अपना संदेश देने के लिए अपने भाषण को अंतिम रूप देने से पहले गांधीजी ने रवींद्रनाथ टैगोर, मदनमोहन मालवीय, बालगंगाधर तिलक, एनी बेसेंट आदि कई राष्ट्रीय नेताओं से विचार–विमर्श किया था। उनके विचार–विमर्श के अंतर्गत ये मुद्दे शामिल थे–

1. क्या हिंदी (भाषा या उर्दू) अंतः प्रांतीय व्यवहार तथा अन्य राष्ट्रीय कार्यवाहियों के लिए उपयुक्त एकमात्र राष्ट्रीय भाषा नहीं है ?

2. क्या हिंदी कांग्रेस के आगामी अधिवेशनों में मुख्यतः उपयोग में लायी जानेवाली भाषा नहीं होनी चाहिए ?

3.क्या हमारे विद्यालय और महाविद्यालयों में ऊँची शिक्षा देशी भाषाओं के माध्यम से देना वांछनीय और सम्भव नहीं है ?

और क्या हमें प्रारंभिक शिक्षा के बाद हिंदी को अपने विद्यालयों में अनिवार्य द्वितीय भाषा नहीं बना देना चाहिए ?

मैं महसूस करता हूं कि यदि हमें जनसाधारण तक पहुंचना है और यदि राष्ट्रीय सेवकों को सारे भारतवर्ष से जनसाधारण से संपर्क करना है तो उपर्युक्त प्रश्न तुंरत हल किए जाने चाहिए।

भाषा के संबंध में गाँधीजी के अपने विचार पूर्णरूप से परिमार्जित और प्रौढ़ हो चुके थे। फिर भी इंदौर जाने के पहले उन्होंने अपने समकालीन नेताओं से मत लेकर अपने विश्वास को और भी पुष्ट बना लिया। इंदौर में सभापति के मंच से गांधीजी ने जो भाषण दिया, उसके कुछ मुख्य अंश यहां प्रस्तुत है–

हमें ऐसा उद्योग करना चाहिए कि एक वर्ष में राजकीय सभाओं में, कांग्रेस में प्रांतीय भाषाओं में और अन्य समाजों और सम्मेलनों में अंग्रेजी का एक भी शब्द सुनाई नहीं पड़े हमे अंग्रेजी का व्यवहार बिल्कुल त्याग दें। आप हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनने का गौरव प्रदान करें।

हिंदी भाषा की व्याख्या का थोड़ा–सा ख्याल करना आवश्यक है। मैं कई बार व्याख्या कर चुका हूं कि हिंदी वह भाषा है, जिसको उत्तर में हिंदू व मुसलमान बोलते हैं और नागरी अथवा फारसी लिपि में लिखी जाती है। यह हिंदी एकदम संस्कृतमयी नहीं है। न वह एकदम फारसी शब्दों से लदी हुई है। देहाती बोली में मैं जो माधुर्य देखता हूं, वह न लखनऊ के मुसलमान भाइयों की बोली में, न प्रयाग के पंडितों में पाया जाता है। भाषा वहीं श्रेष्ठ हैं, जिसको जनसमूह सहज में समझ लें। गांधीजी की प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष प्रेरणा से दक्षिण पहुंचकर हिंदी प्रचार–प्रसार में योग देने वाले बिहार के युवकों में सर्वश्री प्रताप नारायण वाजपेयी, पंडित अवधनंदन परिव्राजक, रघुदयाल मिश्र, राम भरोसे श्रीनिवास, क्षेमानंद राहत और मध्यप्रदेश के ऋषिकेश शर्मा आदि प्रमुख थे। गाँधीजी से प्रेरित निष्ठावान प्रचारकों से दक्षिण के चारों राज्यों में हिंदी वर्गों का संचालन के साथ हिंदी प्रचार का एक व्यवस्थित आंदोलन चल पड़ा, जिसके परिणामस्वरूप दक्षिण की

जनता की सद्–प्रेरणा से गाँव–गाँव पहुँचकर हिंदी पढ़ते थे। अपने जीवनकाल में गाँधीजी स्वयं एकाध बार दक्षिण भारत पधारकर हिंदी प्रचार आंदोलन में सक्रिय भागीदारी के साथ–साथ भाषा प्रचार में मनसा–वाचा–कर्मणा संलग्न युककों का उत्साहवर्द्धन किया थे।

गांधीजी की प्रेरणा और प्रोत्साहन से देश में हिंदी–हिंदुस्तानी के प्रचार–प्रसार के लिए कई संस्था–संगठनों की स्थापना हुई थी। 31 मई सन् 1942 में मुंबई में स्थापित हिंदुस्तानी प्रचार सभा, राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, वर्धा आदि गाँधीजी की संप्रेरणा के ही परिणाम है। गाँधीजी से प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रेरिक कुछ अन्य उत्साही हिंदी प्रेमियों के प्रयासों के परिणामस्वरूप दक्षिण के चारों राज्यों में हिंदी प्रचार–प्रसारार्थ कई छोटी–बड़ी हिंदी प्रचार संस्थाओं की स्थापना हुई, जो आज भी सक्रिय है। गाँधीजी ने हिंदी पत्रकारिता की मशाल जलाई और आज भी कई युवक हिंदी की प्रतिष्ठा के लिए सक्रिय योगदान दे रहे हैं।

दुनिया से कह दो गाँधी अँग्रेजी नहीं जानता'

गाँधीजी की हिंदी निष्ठा अनन्य है। भारत की आजादी मिलने के बाद एक संवाद्दाता के सवाल का जवाब देते हुए गाँधीजी ने कहा था, 'दुनिया से कह दो गाँधी अंग्रेजी नही जानता।' इस कथन में भारतीय भाषाओं की प्रतिष्ठा की गांधीजी की संकल्पना अप्रत्यक्ष रूप में उभर कर हमारे सामने आती है। गाँधीजी यह मानते थे कि राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी को काम में लाना देश की शीघ्र उन्नति के लिए आवश्यक है। गाँधीजी के इसी अभिमत का प्रभाव भारतीय संविधान, निर्माण समिति पर भी पड़ा, तभी तो संविधान सभा ने एकमत होकर हिंदी को 'राजभाषा' का दर्जा दिया था।

'राजभाषा के रूप में हिंदी के कार्यान्वयन की स्थिति जैसी भी हो, आज कई लोग 'गाँधी' और 'हिंदी' को विवादास्पद मुद्दों के रूप में मानते हुए अनावश्यक विवादों के घेरे में फंसाकर रखना भले ही पंसद कर रहे हैं, मगर एक सच्चाई यह भी है कि वैश्वीकरण के दुष्परिणामों के शिकार हर कोई बन रहे हैं और हमारी तमाम बोलियां भी इससे बुरी तरह से प्रभावित है। गांधी व अन्य राष्ट्रीय आंदोलन के नेताओं की भावना को यदि हम सही मायने में समझने की कोशिश करेंगे तो हम अपनी भाषाओं की प्रतिष्ठा के लिए निष्ठापूर्वक कार्य करने के लिए संकल्पबद्ध होकर आगे बढ़ेंगे। इस क्रम में हिंदी को एक संपर्क माध्यम के रूप में मानने में बेहिचक अपनाने हर कोई तैयार हो जाएंगें। संकुचित राजनीति को छोड़ दें, तो सच्चाई यह भी है कि आज भी अंग्रेजी को समझने से उनके प्रति श्रद्धा प्रकट करने वाले असंख्य लोग हैं और आज हिंदी को भी चाहने वाले दुनिया में असंख्य लोग हैं। राष्ट्रपिता के रूप में प्रतिष्ठित गाँधीजी भारत की राष्ट्रीय संकल्पना के लिए ही नहीं भारत की भाषाओं की राष्ट्रभाषाओं के रूप में प्रतिष्ठा के लिए भी प्रेरक के रूप में भाषा–प्रेमियों के दिलो–दिमागों पर सदा अमर रहेंगे।

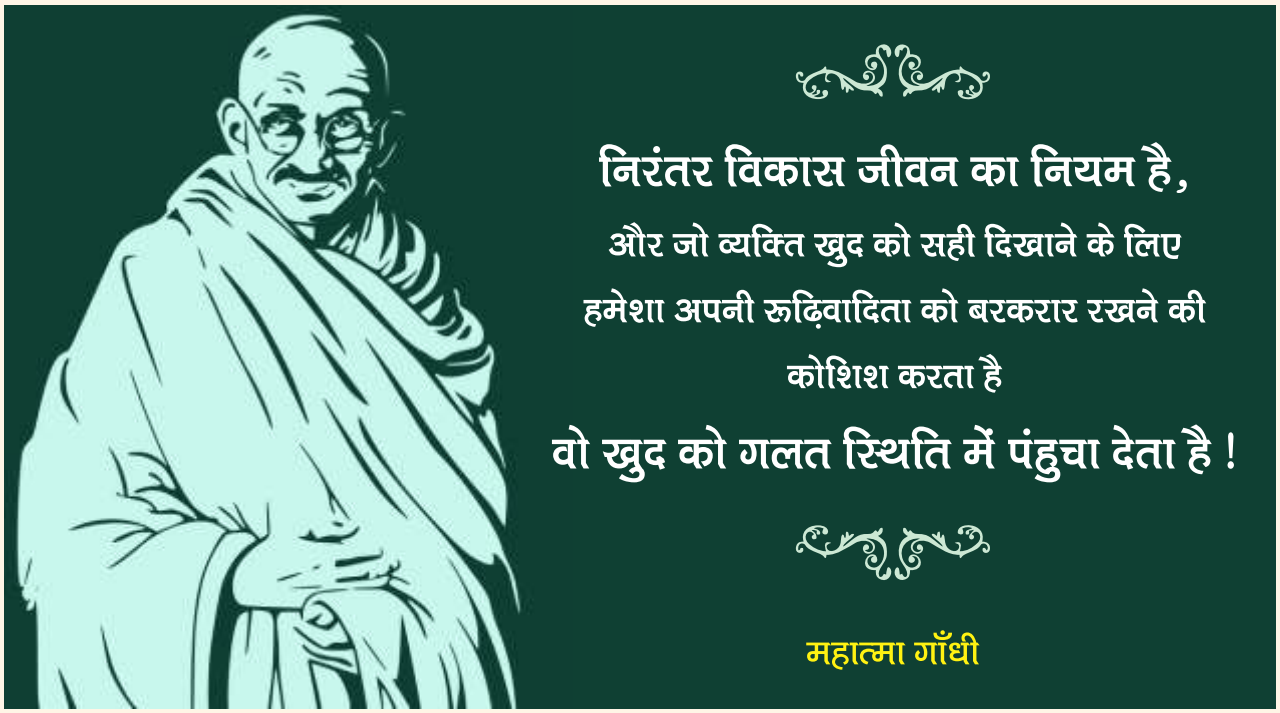

हिंदी साहित्य पर गाँधीजी का प्रभाव

विजयेन्द्र स्नातक

विश्ववंद्य महात्मा गाँधी के प्रयत्न और पुरूषार्थ से जहाँ हमारे देश को स्वतंत्रता प्राप्त हुई, वहीं उनके महान व्यक्तित्व से एक नवीन जीवन–दर्शन एवं गंभीर सांस्कृतिक प्रेरणा भी हमें मिली है। भारतवर्ष को ब्रिटिश साम्राज्य की दासता से मुक्त कराने के लिए उन्होंने समय–समय पर जो आंदोलन किए, उनकी अनुकरणात्मक गूंज राजनीतिक क्षेत्रों में आज भी सुनी जा सकती हैं। किंतु गांधीजी द्वारा प्रदत सांस्कृतिक चेतना अन्य क्षेत्रों की भांति आधुनिक हिंदी साहित्य से भी धीरे–धीरे लुप्त होती जा रही है। आज के नवलेखन में गांधीवाद या गांधी–दर्शन का सर्वथा प्रत्याख्यान हैं, ऐसा तो मैं नहीं कहता, किंतु उसे लगभग त्याज्य ठहरा दिया गया है। एक समय था जब महात्मा गांधी अपने अहिंसात्मक प्रयोग की प्रथम विजय के बाद अफ्रीका से स्वदेश आए थे, और उनके भारत पहुंचते हिंदी के कवियों ने उनकी प्रशस्ति–गान प्रारंभ कर दिया था।

मैं नहीं जानता कि भारत की अन्य भाषाओं में गाँधी का यशोगान सबसे पहले कब हुआ, किंतु हिंदी में 'एक भारतीय आत्मा' का 'निःशस्त्र सेनानी' कविता सन् 1913 में प्रकाशित हुई, जिसमें कवि ने मोहनदास गांधी को दक्षिण अफ्रीका संग्राम का 'निःशस्त्र सेनानी' ठहराया था। इस कविता में गांधीजी के सत्याग्रह और अहिंसात्मक निष्क्रिय प्रतिरोध को सैद्धान्तिक स्तर पर सर्वप्रथम स्वीकृति मिली थी :

'किन्तु क्या कहता है आकाश, ह्रदय हुलसो सुन यह गुंजार।
पलट जाए चाहे संसार, न लूंगा इन हाथों तलवार।'

दक्षिण अफ्रीका से लौटने के बाद गाँधीजी की कर्मभूमि भारतवर्ष बनी और अहिंसा–सत्य के साथ निष्क्रिय प्रतिरोध का नया संघर्ष–मंत्र उन्होंने भारतवासियों को दिया। ज्यों–ज्यों गांधीजी की विचारधारा देश में फैली त्यों–त्यों देशवासियों के मन में उनके प्रति श्रद्धा और स्नेह बढ़ता गया और कुछ वर्षों से ही वह 'महात्मा' के रूप में पूज्य बन गए। उनके व्यक्तित्व एवं कार्यों का प्रभाव देश के सभी क्षेत्रों में लक्षित होने लगे।

भारतवर्ष के राजनीतिक इतिहास में गाँधी –युग सन् 1920 से सन् 1948 तक माना जाता है। इस युग में कदाचित ही कोई कवि या लेखक ऐसा होगा, जो गाँधीजी से प्रभावित न हुआ हो और जिसने अपनी रचनाओं में उस युग के आंदोलनों का वर्णन न किया हो, किंतु गांधी–दर्शन की स्पष्ट और प्रत्यक्ष का स्तवन करने वाले साहित्यकार तो शताधिक हैं, किंतु चिंतन या विचार–पक्ष को स्वीकार कर रचना करनेवालों की संख्या सीमित है। अपने इस निबंध में मैंने दोनों प्रकार के प्रभाव की ओर संकेत करने का प्रयास किया है, स्थल और बाह्म प्रभाव युगीन होता है, वह प्रायः फैशन बनकर आता है। मैंने इस फैशन वाले युगीन प्रभाव की भी इस निबंध में चर्चा की है।

काव्य, उपन्यास तथा नाटक–

सन् 1920 के बाद महात्मा गाँधी ने सर्वतोव्यापी सक्रिय राष्ट्रीय चेतना द्वारा जन–मानस को इतने चमत्कारी ढंग से प्रभावित किया कि राजनीति, धर्म, साहित्य, दर्शन और कला सभी क्षेत्रों में सत्य और शिव का आग्रह प्रबल हो उठा। राजनीतिक संघर्ष में सत्याग्रह एक संश्लिष्ट शब्द बनकर साधन के रूप में स्वीकार हुआ तो साहित्य में इस सत्य को सूक्ष्म स्तरों पर उद्‌घाटित किया गया। गाँधीजी ने स्वयं सत्य की व्याख्या करते हुए सत्य को परमेश्वर कहा है और ईश्वर तथा मानवता की नितांत एकता का प्रतिपादन किया है। साहित्यिक कृतियों में सत्य का यही रूप गृहीत हुआ और गाँधी –तत्व दर्शन की यथार्थ व्याख्या प्रस्तुत करने के लिए काव्य, उपन्यास तथा नाटक लिखे गए। वस्तुतः इन्हीं कृतियों में गाँधीजी का प्रभाव लक्ष्य करने योग्य है। कृतिया ंतो अनेक हैं, किंतु मैं तीन–चार प्रतिनिधि रचनाओं का ही उल्लेख करँगा।

इस संदर्भ में सबसे पहला स्थान रामनरेश त्रिपाठी कृत खंडकाव्य 'पथिक' का है। पथिक की रचना सन् 1920 में हुई थी। मोहनदास करमचंद गाँधी तब तक महात्मा गाँधी बन चुके थे और उनका अंहिसात्मक आंदोलन देशव्यापी हो गया था। 'पथिक' काव्य की रचना करते समय त्रिपाठी जी के अंतर्मन में एक ऐसे नायक की कल्पना थी जो विदेशी शासन से पीड़ित प्रजा को आत्मबलिदान का पाठ पढ़ाकर संघर्ष के लिए तैयार कर सके। पथिक युद्ध अहिंसक और मानवतावादी दृष्टि से सम्पन्न निःस्वार्थ सेवक के रूप में चित्रित किया गया है। पथिक के जीवन का ध्येय वही है जो उस समय महात्मा गांधी का था। स्वराज्य, स्वदेशी और स्वभाषा की स्थापना में पथिक उसी तरह संलग्न हैं, जैसे महात्मा गाँधी थे।

अपना शासन करो यही शांति है, सुख है।

पराधीनता से बढ़कर जग में न दूसरा दुःख है।

गाँधीजी की विचारधारा को आत्मसात कर साहित्य–सृजन करने वाले साहित्यकारों में से कुछ कवियों ने तो गाँधीजी की स्वराज्य विषयक–धारणा (सत्याग्रह, अहिंसा, सत्य, निर्भयता आदि तत्वों) को ज्यों–का त्यों अपनी कविता में संजो दिया है। मैथिलीशरण गुप्त की एक उद्‌बोधन–पूर्ण कविता में इन सभी तत्वों का प्रतिपादन दृष्टव्य है (कविता भले ही कविता न रही हो, किंतु गाँधीजी के सिद्धांतों को स्थान देने का मोह कविता के प्रत्येक शब्द से स्पष्ट है)–

भय ही नहीं किसी का है जब, करें किसी पर हम क्यों क्रोध।

जिएँ विरोधी भी, विरोध ही, पाएगा इससे परिशोध।

अस्त्र अपूर्व अमोघ हमारा, निश्चित है निष्क्रिय प्रतिरोध।

प्रतिपक्षी भी रण में हमसे, पावें प्रेम, प्रसाद, प्रबोध।

रक्तपात वीरत्व नहीं, वह है वीभत्स विधान।

सुनो–सुनो भारत–सन्तान।

अध्यात्म तत्व और सर्वभूतहित–कामना–

अध्यात्म तत्व गाँधीवाद से प्रेरित है। सर्वभूहित–कामना भी गाँधीवाद की प्रेरणा का फल है। किंतु मैं इन निष्कर्षों के पक्ष में अपना मत नहीं दे सकता। कवि पंत की प्रगति–चेतना को छोड़कर मैं गाँधीवाद को छायावादी काव्यमें खोजने के पक्ष में नहीं हूं। हां, इतना प्रभाव अवश्य हैं कि पंत और महादेवी ने महात्मा गाँधी के प्रति श्रद्धा–भाव की अभिव्यक्ति करते हुए उनके सिद्धांतों को भारतीय–संस्कृति की गौरवपूर्ण परंपरा का विकास माना है। पंतजी के प्रगतिवादी काव्य पर गाँधी के व्यक्तित्व की गहरी छाप है।

मार्क्सवादी विचारों की प्रबल उत्तेजना में गाँधीजी ही एक ऐसे मौलिक व्यक्ति थे जो पंत के साथ रहे। फलतः 'युगांत', 'युगवाणी' और 'ग्राम्या' में हर तीसरी कविता के बाद किसी–न–किसी रूप में उन्हें देखा जा सकता है। कुछ विद्वानों ने प्रसादजी की कृतियों में, विशेषतः कामायनी में गांधी का प्रभाव ढूढ़ने का प्रयास किया है। प्रसाद के मानवतावाद के आदर्श में गाँधी विश्वमानव को ढूढ़ निकाला है, परन्तु प्रसादजी मुलतः गाँधीवादी कवि नहीं हैं। प्रसाद की राष्ट्रीय–सांस्कृतिक चेतना भारतीय परंपरा के मूल उत्स से संयुक्त थी, गांधीजी उस मूल उत्स से जुड़ें नहीं है। भगवद्‌गीता और वैष्णवता से आगे गाँधीजी नहीं पहुंचते।

गांधीजी के अहिंसा, सत्य, प्रेम, आत्मशुद्धि, आत्मनियंत्रण, तप–त्याग जैसे मूलभूत आदर्शों को स्वीकार कर सियारामशरण का छायावादोत्तर काव्य 'उन्मुक्त' इस संदर्भ में सर्वाधिक उल्लेख्य है। उन्मुक्त की कल्पित कथा गाँधी –दर्शन को घटनाचक्रों के माध्यम से पल्लवित करने में पूर्णतः सफल है। गुणधर जैसे शुद्ध–सात्विक अहिंसक पात्र की कल्पना सियारामशरण गुप्त ही कर सकते थे। क्या गुणधर गाँधीजी का प्रतिरूप नहीं है? क्या वह मन, वचन, कर्म से गांधी का अनुयायी नहीं है? वह गांधीजी की भाषा में ही बोलता है और गाँधीजी की पद्धति से ही कर्म करता है–

हिंसानल से शान्त नहीं होता हिंसानल, जो सबका है वही हमारा भी है मंगल

मिला हमें चिर सत्य आज यह नूतन होकर, हिंसा का है एक अहिंसा ही प्रत्युत्तर।

सियारामशरण के अग्रज भी युद्ध को अनिष्ट की परंपरा मानते हैं, किंतु उनकी वाणी में गाँधी –मार्ग का वैसा आग्रह नहीं हैं जैसा 'उन्मुक्त' में है। युज की निस्सारता दिखाते हुए पृथ्वी–पुत्र से माता भूमि कहती हैं–

एक के अनन्तर अपेक्षा एक युद्ध की,

देखती मैं आ रही हूँ ज्ञात नहीं कब से

एक सदुद्देश्य कहकर सभी जूझे हैं,

किन्तु एक इति में जुड़ा है अथ दूसरा।

राष्ट्रपिता और राष्ट्रभाषा

लक्ष्मीनारायण सुधांशु

राष्ट्रपिता बापू जब मात्र श्री मोहनदास करमचंद गाँधी थे और दक्षिण अफ्रिका के प्रवास में थे, तब से ही उन्हें भारतीय भाषाओं से हिंदी, गुजराती, तमिल, तेलुगू आदि से अनुराग था। प्रवासी भारतवासियों के बच्चों की शिक्षा के लिए वह ऐसी शाला का स्वयं संचालन करते थे और दूसरे भारतीयों को भी प्रोत्साहित करते थे, जिसमें उनकी मातृभाषाओं के माध्यम से शिक्षा देने की व्यवस्था रहे। जब गाँधीजी प्रवासी जीवन छोड़कर भारत आए, तब भी उन्होंने अपने इस विचार को छोड़ा नहीं, बल्कि अखिल भारतीय दृष्टि से हिंदी को राष्ट्रभाषा के उपयुक्त समझा और मन–वचन–कर्म से अपने इस विचार को देश के सम्मुख रखा। इसके पूर्व भी भारत के अनेक दूरदर्शी तथा अहिंदीभाषी नेताओं ने हिंदी भाषा को ही सारे देश के लिए सामान्य भाषा के रूप में ग्रहण किया।

प्रत्येक राष्ट्र की अपनी राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। राष्ट्रभाषा एक नहीं, अनेक भी हो सकती हैं, पर होनी अवश्य चाहिए। दक्षिण अफ्रीका के प्रवास से भारत लौटकर गाँधीजी ने सारे देश का भ्रमण किया और हिंदी को राष्ट्रभाषा बनाए जाने के अपने विचार को पुष्ट किया।

राष्ट्रभाषा का नामकरण हिंदी या हिंदी–हिंदुस्तानी किया गया। हिन्द की भाषा, हिंदुस्तान की भाषा हिंदुस्तानी हुई। ये दोनों ही नाम संस्कृत–मूलक नहीं हैं, भारतीय भी नहीं हैं, किन्तु ये दोनों नाम सैकड़ों वर्षों से भारत में हिंदु शब्द के साथ–साथ, इस प्रकार घुलमिल गए हैं कि अब इनके विदेशी होने का बोध ही नहीं होता। इतना ही नहीं, हिंदुस्तान के बदले हिंदुस्तान और उससे निकली हिंदुस्तानी ही शब्द के रूप में प्रायः सर्वमान्य बनती रही।

भाषा के संबंध में गाँधीजी ने शुरू–शुरू में जो कुछ कहा है, उसका एक अंश मैं उनके 'हिंद स्वराज्य' (सन् 1909 ई.) से उद्यत करना चाहता हूं। उन्होंने कहा था– हर एक पढ़े–लिखे हिंदुस्तानी को अपनी भाषा का, हिंदू को संस्कृत का, मुसलमान को अरबी का, फारसी को पर्शियन का और सबको हिंदी का ज्ञान होना चाहिए। कुछ हिंदुओं को अरबी और कुछ मुसलमानों को और पारसियों को संस्कृत सीखनी चाहिए। उत्तर और पश्चिम में रहने वाले हिंदुस्तानी को तमिल सीखनी चाहिए। सारे हिंदुस्तान के लिए तो हिंदी ही होनी चाहिए। उसे उर्दू या नागरी लिपि में लिखने की छूट रहनी चाहिए। हिंदु–मुसलमानों को ठीक रखने के लिए बहुतेरे हिंदुस्तानियों को दोनों लिपियाँ जानना जरूरी है। ऐसा होने पर हम अपने आपस के व्यवहार में से अंग्रेजी निकाल बाहर कर सकेंगे।'

गाँधीजी ने भारत की राष्ट्रभाषा के लिए हिंदी नाम का ही बार–बार उपयोग किया है। यह बात दूसरी है कि उन्होंने कुछ हिंदुओं को उर्दू की फारसी लिपि तथा कुछ मुसलमानों को हिंदी की नागरी लिपि सीखने पर जोर दिया है। हिंदी भाषा का क्या रूप रहे, इसके संबंध में उन्होंने अखिल भारतीय हिंदी साहित्य सम्मेलन के इंदौर–अधिवेशन (सन् 1918ई.) के अपने लिखित अध्यक्षीय भाषण में कहा–'हिंदी भाषा की व्याख्या का थोड़ा–सा ख्याल करना आवश्यक है। मैं कई बार व्याख्या कर चुका हूं कि हिंदी भाषा वह भाषा है, जिसे उत्तर में हिंदू व मुसलमान बोलते हैं और जो नागरी अथवा फारसी लिपि में लिखी जाती है। यह हिंदी बोलते हैं और जो नागरी अथवा फारसी लिपि में लिखी जाती है। यह हिंदी एकदम संस्कृतमयी नहीं हैं, न यह एकदम फारसी शब्दों से लदी हुई है।'

विवाद कूटनीतिक चाल का परिणाम–

हिंदी–उर्दू या हिंदी–हिंदुस्तान तथा नागरी–फारसी लिपियों को लेकर देश में पीछे जो विवाद बढ़ उसके मूल में अंग्रेज साम्राज्यवादियों की दूरदर्शी कूटनीतिक चाल थी, जिसकी रचना फोर्ट विलियम कॉलेज में की गई थी। हिंदी–उर्दू सामान्य रूप से साथ–साथ चलती थी। कोई नागरी लिपि में लिखता तो काई फारसी लिपि में। हिंदु और मुसलमान का जाति भेद या धर्म–भेद भाषा पर आधारित नहीं था। जब फोर्ट विलियम कॉलेज के ईसाई मिशनरियों के हाथ में हिंदी तथा उर्दू भाषाओं की गद्यात्मक शैलियों के गठन का अवसर आया, तब उन्होंने कुछ पढ़े–लिखे हिंदू पंडितों को बताया कि वे संस्कृत शब्दों को मिलाकर हिंदी गद्य का स्वरूप तैयार करें और

कुछ मुसलमान मौलवियों को अरबी–फारसी शब्दों से भरी पूरी उर्दू भाषा की शैली बनाने के लिए कहा। पंडित और मौलवी दोनों ही ईस्ट कंपनी के फोर्ट विलियम कॉलेज के वैतनिक कर्मचारी थे। दोनों को यह बात अपने–अपने ढंग से बड़ी पसंद आई। ईसाई मिशनरियों का उद्देश्य ही इतना था कि हिंदी और उर्दू दोनों भाषाएँ एक–दूसरे से दूरचली जाएं। एक की लिपि नागरी तथा दूसरे की फारसी निश्चित की गई।

हिंदी भाषा का अपना व्याकरण था, पर उर्दू का अपना व्याकरण नहीं था, इसलिए उसे हिंदी व्याकरण का ही आधार लेना पड़ा। यों जब विभेद बहुत बढ़ गया तक उर्दू भाषा पर अरबी भाषा के व्याकरण का प्रभाव भी पड़ने लगा। राजनीति के कारण यह भेदभाव बढ़ने लगा। पंजाब के हिंदु शांतिपूर्वक उर्दू भाषा तथा फारसी लिपि का व्यवहार रामायण तथ महाभारत पढ़ने में करते थे। इसी प्रकार बंगाल के मुसलमान निर्द्वन्द्व भाव से संकृत–गर्भित बंगला भाषा में अपने धर्मग्रन्थों का पारायण करते थे। कहीं कोई उपद्रव नहीं था। जब देश में स्वाधीन होने की आकांक्षा जगी, तब अंग्रेज महाप्रभुओं ने हिंदुओं और मुसलमानों को कमजोर करने के लिए उन्हें दो राजनीतिक मंचों पर खड़ा करा दिया। इसमें वे सफल भी हुए।

गाँधीजी की धारणा थी कि भारत की स्वाधीनता के लिए हिंदू–मुसलमान की एकता आवश्यक है। जब तक दोनों धर्मावलम्बियों को मिलाकर नहीं रखा जाएगा तब तक भारत का स्वराज्य नहीं मिल सकता। इसी कारण गाँधीजी ने हिंदी पर ज्यादा जोर देना शुरू किया। पहले तो गाँधीजी ने हिंदी–हिंदुस्तानी की लिपि ऐच्छिक रखी। चाहे वह नागरी लिपि में लिखी जाए या फारसी लिपि में, किंतु इतने से उनका काम चलता दिखाई नहीं पड़ा। वे मुसलमानों को एक साथ बनाए रखने के लिए कुछ और आगे बढ़ें। उन्होंने राष्ट्रभाषा के लिए हिंदी के बदले हिंदुस्तानी नाम पसंद किया और दोनों लिपियों की जानकारी राष्ट्रभाषा के हिमायतियों के लिए अनिवार्य कर दी। गाँधीजी का उद्देश्य बड़ा सात्विक था। वह समझते थे कि हिंदू मुसलमानों की एकता के बिना अंग्रेज इस देश को छोड़ेंगे नहीं और जब तक देश की अपनी एक राष्ट्रभाषा नहीं बनती तब तक अंग्रेजी भी हटेगी नहीं। अंग्रेज और अंग्रेजी दोनों को साथ–साथ हटाने का उनका संकल्प था। उनके सारे राजनीतिक क्रियाकलाप इसी उद्देश्य की सिद्धि के लिए अग्रसरित होते थे। गांधीजी ने कई बार अनेक अवसरों पर स्पष्ट कहा है कि हिंदी या हिंदुस्तानी का प्रश्न मेरे लिए स्वराज्य का प्रश्न है।

मुसलमानों को देश की आजादी में हिस्सा लेने के लिए तैयार करने में गाँधीजी को बहुत दूर तक जाना पड़ा। हिंदी से वह हिंदुस्तानी पर उतरे, फिर केवल हिंदुस्तानी पर आए, पर वह अंततः राष्ट्रभाषा के प्रश्न पर मुसलमानों की भावनाओं पर विजय प्राप्त नहीं कर सके। मुसलमानों ने उनकी नीयत पर यकीन नहीं किया। वे बराबर यह कहते रहे कि उर्दू–फारसी को दबाकर हिंदी–नागरी को चलाने की उनकी यह चाल है। एक बार एक मुस्लिम विद्वान ने उनकी आलेचना करते हुए कहा कि गाँधीजी दो–दो बार हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति बनें। हिंदी के लिए उन्होंने लाखों रूपए का चंदा मांगा। लेकिन अंजुमन की सदारत नहीं की। गाँधीजी ने कहा कि कभी किसी ने उनसे अंतुमन की सदारत के लिए आग्रह नहीं किया और न उसके लिए चंदा मांगने के लिए कहा। वस्तुतः गाँधीजी उर्दू–फारसी के लिए जितनी हद तक जा सकते थे, वह गए। हिंदू और मुसलमान को जिस प्रकार वह मिलकर रखना चाहते थे, उसी प्रकार वह हिंदी–उर्दू को भी मिलाकर हिंदुस्तानी भाषा बनाना चाहते थे। उनके सामने वास्तविक प्रश्न न हिंदी का था और न उर्दू का, प्रश्न था केवल स्वराज्य प्राप्त करने की कुंजी का। नागरी–फारसी में लिखी हिंदुस्तानी को वह स्वराज्य की कुंजी मानते थे। दुर्भाग्यवश वह अपने जीवन में इस कुंजी को प्राप्त नहीं कर सके। देश को दो खंडों में बांटने के बाद ही स्वराज्य मिल सका। उनकी मृत्यु के बाद भारत की संविधान–सभा ने नागरी लिपि में लिखित हिंदी को भारत की संघीय भाषा–राष्ट्रभाषा–की मान्यता दी। अरबी–फारसी भाषाओं के बहुप्रचलित शब्दों को ग्राह्म मानते हुए संस्कृत–मूल के शब्दों से ही संघीय भाषा हिंदी को परिपुष्ट करने के सिद्धांत को स्वीकृत किया।

संघीय भाषा हिंदी को इस प्रकार उर्दू–फारसी के संघर्ष से छुटकारा मिला। इसके अतिरिक्त दूसरा संघर्ष भी अंग्रेजी को देश से हटाने का था, जिसे गाँधीजी स्वराज्य–प्राप्ति के लिए बहुत महत्वूपर्ण मानते थे। भारतीय संविधान में अंग्रेजी भाषा को हटाने की व्यवस्था रखी गई, किंतु दुर्भाग्यवश भारतीय संविधान के प्रवर्तित होने के दो दशक बाद भी भारतीय युवकों को भारतीय सेवाओं में अंग्रेजी के बिना प्रवेश पाना असम्भव है। आज भी अंग्रेजी की डिग्री ही नौकरी पाने की कुंजी है। यह हमारे लिए नितांत लज्जा की बात है।

हिन्दी प्रचार की नाकाफियां

कनक तिवारी – प्रसिद्ध न्यायविद् एवं महाधिवक्ता

पता नहीं हिन्दी का क्या भविष्य होगा ? संविधान की आठवीं अनुसूची में हिन्दी अंग्रेजी वर्णमाला के क्रम के अनुसार छठें क्रमांक पर अंकित है। हिन्दी वर्णक्रम का अनुसरण किया जाता तो लगभग अंतिम स्थान पर लिखी जाती। अनुच्छेद 343 के अनुसार संघ की राजभाषा हिन्दी और लिपि देवनागरी होगी। पंद्रह वर्ष की अवधि तक अंगरेजी उसके स्थान पर स्थापित रखी गई। पंद्रह वर्ष की अवधि कि'तों में बढ़ती जा रही है। हिन्दी के लेखकों, अध्यापकों और बुद्विजीवियों ने उसे साहित्यिक, सांस्कृतिक और भाषायी व्यवहार का विषय सीमित दुनिया का मामला बना लिया है। हिन्दी का राष्टंभाषा होना जरुरी है। उसका राजकीय व्यवहार में इस्तेमाल का सवाल संविधान सभा के गर्भगृह में उठाया। सावधानी बरती गई होती, तो कई बुनियादी दिक्कतों से बचा जा सकता था।

संविधान सभा की पहली बैठक 9 दिसम्बर 1946 में हिन्दी समर्थक आर–वी– धुलेकर ने कार्यकारी अध्यक्ष सच्चिदानन्द सिन्हा से जबरदस्त आग्रही तकरीर की कि कार्यवाही हिन्दी में चलाई जाए। सदस्यों की टोकाटाकी के बीच तैश में कह दिया कि जिन सदस्यों को हिन्दुस्तानी नहीं आती उन्हें हिन्दुस्तान में रहने और संविधान सभा में बैठने का अधिकार नहीं मिलना चाहिए। दिक्कत यह भी हुई कि अंग्रेजी से ज़्यादा हिन्दुस्तानी की मुखालफत हुई। हिन्दी प्रेमियों में उदगम भारत विभाजन के कारण आया था। अंग्रेजी से मुक्ति पाने के आग्रही पारंपरिक संस्कृतनिष्ठ हिन्दी और हिन्दुस्तानी के खेमों में बटेगा। सरदार वल्लभभाई पटेल के सुझाव पर राष्ट्रभाषा का सवाल मूल अधिकारों के परिच्छेद से अलग कर दिया गया।

भाषा के मसले को लेकर कांग्रेस नेतृत्व का सरोकार ? घबराहट, अनिर्णय, विरोधाभास, जांच और समालोचना का विषय है। तमाम महानता के बावजूद गांधी भाषा के मामले में कांग्रेस विचारकों को एकजुट, प्रतिब) और हिन्दी उन्मेषक नहीं बना सके। कांग्रेसियों ने संदर्भों, प्राथमिकताओं और चुनावों का किया। वे देश की आजादी के लिए संघर्ष करने वाले यो) तो रहे लेकिन भाषा के सवाल पर देशभक्ति की खाल उतारकर अंग्रेजों के साथ हो , । यह दोहरा आचरण किसी मुल्क के आजादी के आंदोलन में नहीं दिखाई देता। मुस्लिम सदस्यों ने अधिकतर आमफहम हिन्दी की वकालत की। उनमें मौलाना आजाद मुख्य थे। 'यामाप्रसाद मुखर्जी ने बांग्ला भाषा के प्रति पहला समर्थन व्यक्त किया, फिर सशर्त हिन्दी के पक्ष में दक्षिण भारतीय अधिकांश सदस्यों ने हिन्दी का विरोध किया। कई सदस्य हिन्दी प्रचार और हिन्दी के राजभाषा होने के समर्थन में भी रहे। गोविंददास ने उर्दू के खिलाफ यहां तक कह दिया उसे इसलिए स्वीकार नहीं किया जा सकता कि उसमें रुस्तम और सोहराब जैसे नाम हैं। यद्यपि कहा जिन्हें हिन्दी का विरोध करना है, उन्हें भारत में रहने के बारे में सोचना चाहिए। अतिशय भावुकता के चलते हिन्दी को राजभाषा बनाने को लेकर लचीला रुख अपनाया जाता, तो संभव है उसे दक्षिण भारत का कड़ा विरोध नहीं झेलना पड़ता। गैर हिन्दी भाषाओं के भारतीय नागरिक मोटे तौर पर हिन्दी को अपना चुके हैं, लेकिन हिन्दीभाषियों में से अधिकांश को किसी हिन्दी भाषा का समुचित ज्ञान नहीं है। हिन्दी प्रचार को लेकर यह एक बुनियादी अंतर्भाषिक संबंध का पेंच भी है।

राजभाषा आयोजित किए जाने को लेकर डॉ– रघुवीर और रविशंकर शुक्ल की आशंका, थीं। उनकी समझ थी, इसे कोई सरकारी आयोध, संस्थान या योजना व्यावहारिक नहीं हैं। हिन्दी के ख्यातनाम लेखकों, अध्यापकों और प्रचारकों के वंशज कॉन्वेन्ट स्कूलों के बेहतर छात्रों के रूप में माता पिता का नाम रोशन करते रहते हैं। इनमें से कई विदेशों में बसे भी हैं। हिन्दी प्रेमियों को अपने वंशजों की उपलब्धियों पर गौरव और संतोष करना पड़ता है। हिन्दी के स्वनामधन्य लेखकों ने अमूर्त साहित्य को हिन्दी का याध्वज बनाते हुए, कल्पना की दुनिया के रचनात्मक उत्पादों कविता, कहानी, उपन्यास और नाटक आदि के जरिए भरपूर साहित्य सृजन किया है। भाषा कहीं पारंपरिक, कहीं प्रयोशील, कहीं अमूर्त और कहीं अंग्ररेजी के शाब्दिक अनुवादों से लदी फंदी होती है। हिन्दी भाषा और हिन्दी साहित्य को समानार्थी समझते हुए सरकारी नीतियां बनी हैं। निजी के बड़े प्रकाशकों ने सी कृतियाँ खरीद पर अपना एकाधिकार जमा लिया है। इस व्यापारिक षड़यंत्र से निष्कर्ष निकलता है कि बहुप्रचारित बड़े लेखक ही हिन्दी के कर्णधार हैं। बहुत कम संख्या में छपती और बिकती उनकी किताबें हिन्दी भाषा के कीर्तिध्वजों के रूप में पुस्कालयों में अपने पढ़े जाने की प्रतीक्षा करती रहती हैं।

उल्लेखनीय है कि क्रांतिकारी भगतसिंह ने सह वर्ष की उम्र में कलकत्ता से प्रकाशित 'मतवाला' पत्रिका द्वारा आयोजित अखिल भारतीय निबंध प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार जीता। 1924 में भगतसिंह ने तजबीज की थी कि 'पंजाब में भाषा और लिपि की समस्या' को हल करने के लिए जरूरी है कि देवनागरी लिपि को सभी भाषा, स्वीकार कर किसी साहित्य सम्मेलन या हिन्दी की संस्थाओं में भगतसिंह के प्रस्ताव के अनुरूप उनकी स्मृति में कुछ नहीं कहा जाता। सुभद्रा कुमारी चौहान ने 'खूब लड़ी मर्दानी, वह तो झांसी वाली रानी थी' या

माखनलाल चतुर्वेदी ने 'मुझे तोड़ लेना बनमाली, उस पथ पर देना तुम फेंक' क्या लिख दिया अंगरेज और अंगरेजियत ही यहां से जाने को मजबूर हो, । डॉ– लोहिया ने कहा था कि मैं होता तो महात्मा गांधी और रवीन्द्रनाथ टैगोर को उलाहना देता उन्होंने अपनी 'आत्मकथा' और 'गीतां गई' को गुजराती तथा बांग्ला लिपि के बदले में देवनागरी लिपि में क्यों नहीं लिखा।

सरल हिन्दी में लिखा जाने वाला साहित्य लोकोपयोगी होने पर धटिया, निम्नतर और तिरस्कृत समझाया जाता है। हिन्दी भाषा श्रेष्ठ लेखन और हिन्दीदां लेखकों के अभिजात्य कुल समानार्थी हो जाते हैं। गांव और कस्बों में लिखा जाने वाला जनोपयोगी भाषायी सरलता का साहित्य सरलकृत प्रलाप कहा जाता है। हिन्दी के कई स्वनामधन्य, आत्ममुग्ध और अंतर्राष्ट्रीय ख्याति के लेखकों का भावानुवाद करने वाले हस्ताक्षरों के मुकाबले कवि प्रदीप ने हिन्दी समर्थन के लिए, ज्यादा बौद्विक हलचल पैदा की है। उन्हें अच्छे कवियों की जमात में आलोचकों का सिंडिकेट शामिल नहीं करता। कविता के लोकप्रिय मंचों पर भवानीप्रसाद मिश्र, बच्चन और नीरज जैसे कवियों ने दशकों तक भाषा को द्वार परोसने की कोशिश की। विश्वविद्यालयों के पाठयक्रम, अध्यापन, शोध, फैकल्टियों, अंतर्राष्ट्रीय आदान प्रदान आदि को लेकर कुछ लेखकों का जमावड़ा कुलीन और सत्ता प्रतिष्ठान का करीबी समझा जाता है। उनके लेखन को लेकर पड़ोसी तक को इच्छा नहीं हुई कि पढ़े। सर्वसुलभ लिखे जा रहे साहित्य को घटिया कहने का फतवा तथाकथित कुलीन और आभिजात्य वर्ष के विचारकों को किसने दिया है?

वर्धा में महात्मा गांधी अंतर्राष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय स्थापित तो हुआ है। मॉरीशस में विश्व हिन्दी सचिवालय की स्थापना भी हुई है। आठवें विश्व हिन्दी सम्मेलन के समय विदेशी हिन्दी विद्वानों की शक निर्देशिका भी प्रकाित हुई। 10 जनवरी का दिन विश्व हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाना भी शुरू हुआ है। वर्धा के वि'वविद्यालय की वही हालत है जो राजनीति में महात्मा गांधी की है। उस विश्वविद्यालय से संबध) गतिविधियों की दिशा में कोई ठोस जनोपयोगी काम नहीं हो पाता है। यह मुगालता है कि हिन्दी तेजी से विश्व भाषा बनती जा रही है। सांख्यिकी पर भरोसा किया जाए तो दुनिया के देशों में हिन्दी के छात्रों की संख्या घट रही है। अन्य देशों में छात्र अपनी मातृभाषा की लिपि में हिन्दी पढ़ते हैं। लगातार लान हो रहा है कि हिन्दी को संयुक्त राष्ट्रं संघ की भाषा बनाने की पुरजोर कोशिश की जा रही है। संयुक्त राष्ट्रं संघ में फिलहाल अंगरेजी, रूसी, फ्रांसीसी, चीनी, स्पानीश और अरबी अधिकारिक भाषा, हैं। चीन को छोड़कर भारत ही बड़ी जनसंख्या और हिन्दीभाषियों का देश है। यह तसल्ली की बात है कि 2 अक्टूबर को विश्व अहिंसा दिवस और 21 जून को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में संयुक्त राष्ट्रं संघ ने मान्यता दे दी है। कुल मिलाकर हिन्दी मंत्रालय की फाइलों में बंधी शक संभावित अभिव्यक्ति है जिस पर अंग्रेजीदां लोग कुंडली मारकर बैठे हैं।

हिन्दी को संयुक्त राष्ट्रसंघ में मुखरित करने का काम प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी ने किया। वह मील का पत्थर था। हिन्दी के नाम पर कई शासन प्रायोजित तथा निजी प्रकल्पों के आधार पर कथित विश्व सम्मेलन होते रहते हैं। जिनकी पूछपरख या पहचान होती है, उनका महान हिन्दी सेवक बनने का स्वप्न पूरा हो जाता है। हिन्दी की बेहतरी और प्रचार के लि, श्रमशील और प्रतिबद्ध) लेखकों को आयोजनों का पता ही नहीं होता। निजी सम्मेलनों में खुद के खर्च से हिन्दी प्रचार के नाम पर मुख्यतः तफरीह करने का मौका मिलता है। जिन देशों में हिन्दी की स्थिति नहीं है, वहां भी इसे से सम्मेलन आयोजित होते हैं। दुनिया में हर जगह भारतीय कमोबेश बस ही, हैं। आप्रवासी भारतीयों से संपर्क कर प्रस्ताव, निमंत्र और अनापत्ति प्रमाणपत्र मंत्रा, जाते हैं। उससे जाने और विसा मिलने में सहूलियत होती है। नामधारी और चलताऊ आयोजन हो जाते हैं। प्रतिभागी और स्थानीय आतिथेय लेखकों के प्रतिनिधि बहुत कम श्रोताओं के सामने बंद कमरे में रचनाओं का पाठ करते हैं। आतिथेय कुल में उस देश स्थित भारतीय दूतावास के अधिकारी थोड़ी बहुत दिलचस्पी लेते हैं, तो उन्हें मुख्य अतिथि बनाया जाता है। मेरी कमीज से तेरी कमीज ज्यादा साफ है, कहते आत्ममुग्ध, आत्मसंतुष्ट और आत्मप्रतिबिंबित वातावरण में हिन्दी प्रचार के लिए, कसमें खाई जाती हैं। पालन नहीं करना कसमों के अंदर ही हंसता रहता है।

हिन्दी सम्मेलन में 'हिन्दी' शब्द शेष है। 'सम्मेलन' 'शब्द मुख्य है। सरकारी धन लभ रहा हो तो खर्च करने का जिम्मा सरकारी व्यवस्था पर होता है। कई भाषावीर गैरलेखक होते हैं। वे निजी जान पहचान, तिकड़म, रसूख या लक्ष्मीपुत्र होने का लाभ लेते सम्मेलनों में धींगामस्ती करते हैं। निजी सम्मेलनों के आयोजक मोटे तौर पर ट्रेंवल एजेंट होते हैं। विदेशों में सम्मेलन आयोजित करना आसान नहीं होता। अपनी व्यापारिक योग्यता के चलते गैरव्यावसायिक मौसम में सस्ते होटलों, सस्ते यातायात के साधनों और कुछ उदार स्थानीय व्यक्तियों से संपर्क कर भारतीय लेखकों को सस्ती यात्रा तो कराते हैं। प्रतिभागियों का पूरा ख्याल भी रखते हैं। कई कार्यक्रम मंदिरों और अन्य धार्मिक सांस्कृतिक भवनों में निःशुल्क भी होते है। उनकी उदारता तथा हिन्दी प्रेम के आयोजकों को हिन्दी सम्मेलनों और संस्थाओं का अध्यक्ष और महामंत्री वगैरह भी लेखकों की तिकड़म से बनाया जाता है। इसमें कोई बुराई नहीं है। हिन्दी का भला हो न हो हिन्दी भाषियों की घुमक्कड़ी कातो होता है।

बड़े अखबारों में कई वाक्य देवनागरी लिपि में अंगरेजी शब्द को लाए, बिना नहीं छपते। से अखबार हिन्दी के बदले हिंगलिश के हैं। अपनी प्रसार संख्या बढ़ाने भारतीयों की छाती पर, हिन्दी के कंधे पर रखकर अंगरेजी बंदूकें तानते हैं। मीडिया में इतनी ताकत होती है। कोई उसके खिलाफ उफ तक नहीं कर सकता। हिन्दी की भाषायी अस्मिता को लेकर अतर्राष्ट्रीय कई षड़यंत्र भी हैं। वैश्वीकरण और उपभोक्तावाद के चलते दुनिया के कई मुल्कों की लोकबोलियों को बड़ी और विदेशी भाषाओं के जरि, लील लिया गया है। दुनिया की कई आदिवासी बोलियां लुप्त हो गई हैं। बची खुची लुप्त हो रही हैं। हिन्दी की लोकप्रिय स्थिति भी है। इस भाषा का संस्कार उसके बुनियादी तंतुओं के रूप में मध्यकाल के महान भक्त कवियों ने सबसे ज्यादा किया है। हिन्दी को कबीर, नानक, तुलसी, मीरा, रहीम, सूरदास, रसखान और जायसी जैसे महारथियों के अस्तित्व से अलग नहीं किया जा सकता। इसलिए न, षड़यंत्र के तहत हिन्दीभाषी इलाकों की लोकबोलियों और उपभाषाओं को अंगरेजी के बजा, हिन्दी के खिलाफ अपनी अस्मिता की पहचान के लिए, रूबरू किया जा रहा है। हिन्दी ही नहीं रहेगी तो उसकी सहोदर भाषाओं से निपटना अंगरेजी प्रेमियों के लिए, संभव और सरल होगा।

हिन्दी के साहित्य में अनुवाद भी समस्या है। हिन्दी का श्रेष्ठ लेखन अन्य भाषाओं में अनूदित होना चाहिए। इसके लिए हिन्दीभाषी राज्यों की सरकारें पीठ या अकादमी स्थापित नहीं करतीं। हिन्दी से ज्यादा तो बांग्ला, तमिल, मराठी और गुजराती का साहित्य हिन्दी में अनूदित होकर आता है। हिन्दी के अधिकारी विद्वान भी अपनी रचना हिन्दी में करने के अतिरिक्त भारतीय और विदेशी भाषाओं के श्रेष्ठ साहित्य का अनुवाद हिन्दी में प्रतिबंध) भावना के साथ, महत्वपूर्ण कर्तव्य की तरह नहीं करते। छत्तीसगढ़ के माधवराव सप्रे इसका एक अपवाद हैं। उन्होंने तिलक के गीता रहस्य के अतिरिक्त समर्थ रामदास के भावबोध वगैरह का हिन्दी में अनुवाद बीसवीं सदी के शुरू में ही कर दिया था। हिन्दी की अस्मिता का सवाल राष्ट्रंबोध से भी जुडा है। राष्टीय चेतना विकसित करने में इतर भाषियों का ऐतिहासिक योगदान रहा है। दयानन्द सरस्वती और महात्मा गांधी गुजरातीभाषी थे। लोकमान्य तिलक, गोपालकृष्ण गोखले सहित विनायक दामोदर सावरकर आदि मराठीभाषी थे। विवेकानन्द, रवीन्द्रनाथ टैगोर तथा सुभाषचंद्र बोस बांग्लाभाषी थे। श्रीनिवास शास्त्री, राजगोपालचारी और कई तमाम बुद्विजीवी दरिद्वागा भारत के रहे हैं। इन सबने मिलकर सामूहिक राष्टीय सांस्कृतिक संस्कार रचा है। उस गर्भगृह से ही आधुनिक हिन्दी की प्रसारशीलता को खुला आकाश मिला। इसलिए हिन्दी भारती भी है। छायावाद के कवियों ने हिन्दी और राष्ट्रीय आंदोलन को संपृक्त कर अनेक उपलब्धियां हासिल कीं। प्रसाद, निराला, पंत, मैथिलीशरण गुप्त, महादेवी वर्मा आदि का पुनर्जन्म संभव प्रतीत नहीं होता। उर्दू के बड़े शायरों ने भी हिन्दी और उर्दू को संपृक्त कर भाषायी भाईचारा विकसित किया। उससे भी हिन्दी का लेना देना है। इकबाल और नजीर अकबराबादी जैसे बीसियों शायरों ने भाषायी तमीज का बिरवा बोया। वह फसल अंगरेजों का हंसिया काट रहा है।

भारत अभागा देश है। यहां अपने वतन की भाषा का केवल एक दिन तथाकथित उत्साह के साथ 14 सितम्बर हिन्दी दिवस के रूप में मनाया जाता है। एक समझौता संविधान सभा में विकसित हुआ था कि हिन्दी देश की राजभाषा बन गई है। उस पर अंगरेजी कायम रखने का पंद्रह वर्षीय राहु चिपका दिया गया। कई सांसदों को मालूम था ये पंद्रह वर्ष एक बार के लि, नहीं हैं। किश्तों में अवतरित होते रहेंगे। ऐसी राजनीतिक स्थितियां बनाई जांएगी कि अंगरेजी ही अंगरेजी रहेगी। भारत आजाद और सार्वभौम होने पर भी ब्रिटिश राष्ट्रमंडल में अंगरेज मेम की लठिया के सामने सिर झुका सदस्य है। जब संवैधानिक समस्या खड़ी होगी, निदान ब्रिटिश नजीरों में ढूंढने की कोशिश होगी। भारत अकेला देश है जिसका नाम विदेशी भाषा में इंडिया अर्थात भारत है। संविधान अंग्रेजी में बना है। हिन्दी अनुवाद से विसंगत होने पर अंग्रेजी पाठ अधिकृत है। अच्छी अंग्रेजी नहीं जानने पर रेल के डिब्बो में सहयात्री महिला या बूढ़े को भी सुविधाजनक जगह नहीं देता। हर मां बाप की तमन्ना होती है बच्चा गरीबा होने पर भी कॉन्वेन्ट स्कूल में पढ़े।

तिलिस्म अंग्रेजी के मानसिक साम्राज्य का है। हिन्दी भाषा की स्थिति प्रतिबद्वताओं की जुगाली करने जैसी है। हम मातृभाषा में सोचते हैं। लिखते हैं। बोलते हैं। दुख और दर्द होने पर हिन्दी ही हमारे लिए मलहम की भाषा है। अय्याशी, घूसखोरी, भ्रष्टाचार, पूंजीवाद, रंगभेद, नस्लभेद वगैरह की अंतर्राष्ट्रीय बढ़ोतरी के लिए, अंगरेजी अर्थात यूरोपीय अर्थात यांत्रिक सभ्यता दोषी रही है। कथित सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की सरकार इस अभिशाप से देश को बचाने स्वदेशी प्रयत्न नहीं कर रही है। उसे अमेरिका जाने की लत है। साधारण भारतीय पारंपरिक वेशभूषा को अंतर्राष्ट्रीय प्रचार की पोशाक बनाने के बदले दस लाख रुपये के सूट पहनने को भारतीयता की अस्मिता के साथ जोड़कर बताया जाता है। हिन्दी वस्तुतः भारतीयों के अस्तित्व के लिए अंतः सलिला। उसे नैष्ठिक प्रतिबद्वता के बावजूद हिन्दी प्रचार के चोचलों के जरिए प्रदूषित किया जा रहा है। मृगतृष्णा में तब्दील किया जा रहा है। यह भाषा पुस्तकालयों, अकादमियों, शोधपीठों, व्याकरणाचार्यों, प्रकाशन संस्थाओं, साहित्य सम्मेलनों और हिन्दी निदेशालयों का उत्पाद नहीं हैं। वह भारत के एक सौ तीस करोड़ लोगों के कंठ का गौरवगायन और उनकी आत्मा की अविचल जीवनदायिनी लहर है।

हिंदी का हठयोगी

पारमिता मोहन्ती

उप महाप्रबंधक (विद्युत), सेल सेट भिलाई

हृदय की कोई भाषा नहीं हैं, हृदय-हृदय से बातचीत करता है और हिन्दी हृदय की भाषा है।

महात्मा गाँधी

ये आशीर्वचन है उस महापुरुष के जिसकी हम 150 वीं जन्म वर्षगांठ मना रहे हैं, हाँ हमारे पूज्य बापू, राष्ट्रपिता महात्मा गाँधीजी। यों तो गाँधीजी गैर हिंदी भाषी थे, परन्तु हिंदी को जनमानस की भाषा बनाने में उनका योगदान अतुलनीय रहा है। गुजरात में जन्मे, लन्दन में पढ़े, दक्षिण अफ्रीका में प्रैक्टिस करने के बाद जब वह भारत लौटे, तो उन्होंने सम्पूर्ण भारत का दौरा किया। इसी दौरान उन्होंने पाया की हिंदी ही एक मात्र ऐसी भाषा है जो पुरे हिन्दुस्तान को एक सूत्र में पिरो सकती है। वह गुजराती थे, स्वतंत्रता संग्राम का सबसे पहला आन्दोलन था चम्पारण में, स्थानीय लोगों से जुड़ने के लिए उन्होंने हिंदी भाषा सीखी, वह हिंदी को साधारणतः हिन्दुस्तानी कहते थे। उनके भाषण में संस्कृत का प्रभाव कम था एवं जन मानस को छू जाने वाली सहज सरल हिंदी हुआ करती थी, वह हिंदी को संपर्क भाषा का प्रारूप दे बैठे।

वह कहते थे 'राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी को काम में लाना देश की उन्नति के लिए आवश्यक है।'

हिंदी में जनसंपर्क स्थापित करने हेतु उन्होंने दो अखबार निकाले, 'हरिजन सेवक' एवं 'नवजीवन'। अपने संवाद में हिंदी का उपयोग करते थे, जहाँ तक संभव अपने पत्रों का उत्तर हिंदी में ही दिया करते थे। सर्व प्रथम, इंदौर में हुए हिंदी साहित्य सम्मलेन में जब उनको बोलने को कहा गया, तो उन्होंने कहा जैसे अंग्रेज अंग्रेजी भाषा बोलते हैं, सारे कार्य अंग्रेजी के माध्यम से करते हैं, ऐसे ही हमें हिंदी को राष्ट्र भाषा की तरह अपनाना चाहिए, हिंदी में ही सारे कार्य करनी चाहिए।

गांधीजी द्वारा भेजे गये पांच हिंदी दूतों में एक उनके कनिष्ठ पुत्र देवदास गाँधी भी थे। अंग्रजी के पक्षकार जब ये बोले की अंग्रेजी कार्यालयों में व्यवहार की भाषा बन चुकी है, उसे भी रहने दिया जाये, तो उन्होंने कहा हिंदी ही एक ऐसी भाषा है जो पुरे भारत को जोड़ सकती है, तो उसे तो केवल बोलचाल की भाषा नहीं परन्तु कार्यालय एवं न्यायपालिका की भाषा की रूप में भी प्रयोग में लाना चाहिए। उस काल में जब अंग्रेज हुकूमत भारत से जुड़े हर उस चीज, हर उस शैली, हर उस व्यवस्था को जड़ से समाप्त करने में लगी हुई थी, उस समय हिंदी के पक्ष ले कर खड़े होना गांधीजी की राष्ट्र प्रेम की पराकाष्ठा को दर्शाती है।

"हिंदी भाषा का प्रश्न स्वराज का प्रश्न है।" हिंदी को उन्होंने स्वराज से जोड़ा।

हिंदी को राष्ट्र भाषा के रूप में स्थापित करने के पीछे उनका तर्क यही था, की हिंदी ही एक ऐसी भाषा है, जो देश के अधिकांश जनता को समझ में आती है।

वाइसराय चेम्सफोर्ड के सभा में उन्होंने हिंदी में भाषण दिया तो कुछ लोग उन्हें बधाई दिए। उन्होंने इस बधाई पर बोला "ये अत्यंत शर्म की बात है की ऐसी किसी सभा में पहली बार हिंदी का उपयोग हुआ और उसके लिए मुझे बधाई दी जा रही है, यह इस बात को दर्शाती है की हमारा स्वभिमान कितना गिर चूका है।" भारत जब आजाद हुआ, तो एक ज्वलंत मुद्दा ये था की इस आजाद देश की राष्ट्र भाषा क्या होनी चाहिए, हिंदी, उर्दू या फिर कोई अन्य स्थानीय भाषा ?

जब भारत का बंटवारा हुआ , और किसी विदेशी पत्रकार ने गांधीजी से बोला की वह अपना सन्देश अंग्रेजी में दें, गांधीजी ने जो उत्तर दिए वह उनके अन्दर के दर्द को दर्शाती है। उन्होंने कहा, " जाओ कह दो दुनिया को की गाँधी को अंग्रेजी नहीं आती।" स्वंतंत्रता आन्दोलन में हिंदी मय ये देश अगर इतने भिन्न भाषा भाषी नेताओं को जोड़े रखा था, तो उसके सूत्रधार थे गांधीजी।

वह महान नेता, जो विश्व के अन्य दिग्गज नेता, लेखक, वैज्ञानिक, दार्शनिक आदि महानुभावों से मिलते थे, उन्होंने देखा जो कोई भी देश अपनी भाषा को ले कर आगे बढ़ा है, वह ज्ञान, विज्ञानं, उन्नति के शिखर को छू रहा है. ग्रेट ब्रिटेन, अमेरिका, सोवियत रुस, जापान, चीन, जर्मनी इत्यादि देश इसके ज्वलंत उदाहरण थे।

गाँधी सही मायने में मात्र एक व्यक्तिविशेषका नाम नहीं, यह एक सोच है, एक दर्शन है।

स्वराज, स्वदेश, अपना चरखा, अपनी सूत, अपनी खादी, अपना नमक, अपनी मिटटी...

यह एक स्वतंत्र मानसिकता की परिभाषा है, गुलामी की जंजीरों को तोड़ता हुआ एक सपना है।

यह अँधेरी रात की कालिख से जन्मी एक नयी सुबह की आगाज है।

अत्यंत दुःख की बात है की, जब भारत स्वतंत्र हुआ, संविधान बना, उसमे किसी भी भाषा को राष्ट्रभाषा के रूप में पहचान नहीं दी गयी। केंद्र सरकार अपने कार्यों में हिंदी एवं अंग्रेजी दोनों भाषा को उपयोग में लाती है। अलग अलग राज्य, स्थानीय भाषा का उपयोग करते हैं।

हम भारत के नागरिक सहिष्णु है, विदेशी भाषा, संस्कृति को अपने में समाहित कर आगे बढ़ रहे हैं। हिंदी एवं इंग्लिश के मिलावटी हिंगलिश को उत्तम दर्जा दे बैठे हैं।

सही मायने में देखे तो हम साबरमती के उस संत के सपनों को पूरा नहीं कर पाए हैं, एक देश, एक भाषा का उसका सपना, उसका हठ आज कहीं पीछे छुट गया है।

जरुरत है एक ताकत की, एक जागरूकता की जो हिंदी को अपनाने में हिचके नहीं, एक ऐसी पीढ़ी की जो हिंदी बोलने वालों को हेय नजर से न देखे। तब कहीं हिंदी के उस हठयोगी की तपस्या सफल हो पायेगी, उस राष्ट्रपिता के चरण में इससे बढ़कर श्रद्धा सुमन और हम क्या अर्पण कर सकते हैं !

अंत में बस दो पंक्ति :

"अर्पण है श्रद्धा सुमन तेरे चरणों में गाँधी
जागरूक भारत की राष्ट्रभाषा बनेगी भारत की बेटी हिंदी "
जय हिन्द जय हिंदी

क्रोध एक प्रचंड अग्नि है,
जो मनुष्य इस अग्नि को
वश में कर सकता है,
वह उसे बुझा देगा,
जो मनुष्य अग्नि को वश में नहीं कर सकता
वह स्वयं अपने को जमा लेगा!!

महात्मा गाँधी

गांधी एवं हिंदी - एक चिंतन

जय प्रकाश पाण्डेय

एन.एस.पी.सी.एल. (पी.पी.–3)

सुबह–सुबह नींद खुली मैंने देखा आज का समाचार पत्र घर के दरवाजे पर डाल कर पेपर बाँटने वाला लड़का चला गया था। मैने समाचार पत्र उठाया, आकर बैठा और समाचार पत्र खोलते ही उसके प्रथम पेज की प्रथम मुख्य पंक्ति पर बरबस ही नजर अटक गई। देश के विभिन्न हिस्सों में भीषण आगजनी, तोड़–फोड़, हिंसात्मक घटना, प्रदर्शन में कितनों ने अपने जान गंवाए। कितने पुलिस कर्मी इस उन्माद एवं उग्र प्रदर्शन को रोकने के लिए घायल हुए, और कितनों को अपने जीवन की कुर्बानी देनी पड़ी।

आज इन दंगो के पीछे हम देखें तो मुट्ठी भर संगठन या राजनेता अपरोक्ष रूप से जिम्मेदार हैं। जिनको हमने देश के विकास के लिए चुना है । आज अपने ही देश में आग लगाने पर तुले हुए है। और देश को सम्प्रदाय, भाषा एवं क्षेत्र के नाम पर उन्यद की आग में झोंकते चले जा रहें हैं। क्या यही गाँधी का देश भारत है, जिसको बनाने में गाँधीजी ने अपने प्राणों की आहुती दे दी।

यह सोंचते–सोंचते कब मैं अतीत में खो गया पता ही नहीं चला। फिर अतीत के पटल पर उस महानायक की तस्वीर उभरती चली गई। जिनकी कहानियाँ हमने जीवन पथ के कदम–कदम पर पढ़े और सुने हैं। जो मूर्तिमान होकर चल–चित्र की भांति दृष्टिगोचर हो रहें थे।

बस इसी तरह हमारी आपसी भेद–भाव और झगड़े की वजह से एक के बाद एक करके पूरे भारत पर अंग्रेजों का साम्राज्य स्थापित हो गया। और हमारे राजे–महाराजे आपस में लड़ने और एक दूसरे को नीचा दिखाने में अपने राज्य से हाथ धो बैठे और यह भारत जो कभी सोने की चिड़िया कही जाती थी, गुलाम बन कर रह गई। और फिर शुरू हुआ अंग्रेजों का जुल्मों–सितम। हर जगह भय और आतंक का साम्राज्य, बर्बरता एवं दामन की पराकाष्ठा, चहुंओर अविश्वास और भय ही भय। ऐसे में 2 अक्टूबर सन 1869 को गुजरात के पोरबन्दर में हमारे स्वतंत्रता संग्राम के महानायक मोहनदास करमचन्द गाँधी का जन्म हुआ। जो आगे चलकर महात्मा, बापू, राष्ट्रपिता इत्यादि विभूतियों से अलंकृत हुए।

अपनी प्रारंभिक पढ़ाई पूरी कर गाँधीजी उच्च शिक्षा के लिए लंदन गए और वहाँ से बैरिस्टर की पढ़ाई पूरी करने के बाद जब स्वदेश लौटे तो देश को मुट्ठी भर अंग्रेजों के हाथों रौंदते हुए देख कर गाँधी जी का कोमल हृदय चित्कार कर उठा। उन्होंने देखा कि जो क्रांतिकारी माँ भारती को गुलामी की बेड़ियों से मुक्ति दिलाने के लिए अपने प्राणों की आहुतियाँ दे रहे हैं, वे भी संगठित नहीं हैं। अलग–अलग संगठन और अलग–अलग आजादी के लिए संघर्ष, जिसे अंग्रेजों के दमनकारी नीतियों के आगे विवश होते देख, गाँधी जी को यह समझते देर नहीं लगी, कि अगर इसी तरह हम टुकड़े–टुकड़े में लड़ते रहे, तो अत्याचारी ब्रिटिश शासन से मुक्ति मिलना असंभव है। साथ ही गाँधी जी को ऐसी युक्ति की आवश्यकता थी, जिसमें कश्मीर से कन्या कुमारी तक अटक से कटक तक पूरे भारत के किसान, जवान, नेता, अभिनेता, लेखक, मजदूर हर वर्ग अपना योगदान दे सके। और तब उनके विचार मंथन रूपी आकाश मंडल में बाल सूर्य रूपी हिंदी दिखाई दी जो भारतीय जनमानस को जोड़ने के लिए अमृत स्वरूप काम किया। यह हिंदी अंग्रेजों के खिलाफ ऐसी ब्रह्मास्त्र साबित हुई, जिसके आघात से ब्रिटिश साम्राज्य त्राहि–त्राहि कर उठी।

इस हिंदी के योगदान के फलस्वरूप गाँधी जी से हर प्रान्त एवं हर वर्ग के लोग जुड़ते चले गए। और देखते–देखते ही गांधी जी सर्वमान्य नेता के रूप में उभर कर भारतीय स्वतंत्रता संग्राम के अग्रदूत बन गए। पूरा देश गाँधी जी के इशारे पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने को तैयार था। एक तरफ कृशकाय, अस्थि और चर्म से निर्मित शरीर किंतु सत्य, अहिंसा के बल पर अटल इरादे एवं गगन चुम्बी हौसले थे, तो दूसरी तरफ ब्रिटिश शासन जैसी कुटिल एवं संपन्न साम्राज्य। किंतु वाह रे साबरमती के संत आपने हिंदी जन मानस में स्वतन्त्रता की ऐसी अलख जगाई जिससे अंग्रेजों के हिन्दुस्तान से पांव उखड़ गए। और उन्हें विवश होकर हिन्दुस्तान छोड़ना पड़ा। जिसके परिणाम स्वरूप 15 अगस्त 1947 को भारत स्वतंत्र हुआ। और आजाद भारत के रूप में गौरवान्वित हुआ।

आज भारत का अपना संविधान है, विश्व की सर्वश्रेष्ठ सेनाओं में से एक भारतीय सेना है। विकास पथ पर तेजी से अग्रसर भारतीय अर्थव्यवस्था है। किंतु इसके साथ ही प्रांत, धर्म एवं भाषा रूपी विषैले अस्त्र से भेदते कुछ स्वार्थी तत्व, क्या ये हमारे एकता और भाईचारे को खंडित करने के अपने प्रयास में सफल हो जायेंगे।

अंतर्मन से आवाज आई बिल्कुल नहीं, आज गाँधी जी नहीं हैं तो क्या हुआ, आज भी उनके आदर्श, उनकी विचार धारा भारत के जन–जन की धमनियों में लहू बन कर दौड़ती है, और सबसे बड़ी उनकी पग–पग पर साथ देने वाली हमारी राजभाषा हिंदी है। जिसके प्रचार–प्रसार से हम भारत को एक सूत्र में पिरो सकते हैं। और फिर हमें बाँटने वाले ये मुट्ठी भार लोग कभी अपने उद्देश्य में सफल नहीं होंगे।

सहसा एक झटका लगा, मेरा बेटा मुझे झकझोर कर कह रहा था, पापा क्या सोंच रहे हैं। आप की चाय ठंडी हो गई। दिल ने ठंडी आह भरी और आँखों ने उस महापुरुष और राजभाषा हिंदी के सम्मान में अश्रुपूर्ण श्रद्धा सुमन अर्पित किये।

हिंदी के प्रबल समर्थक -गाँधी

विजय कुमार राखोण्डे

वरिष्ठ सांख्यिकीय अधिकारी, राष्ट्रीय सांख्यिकीय कार्यालय, दुर्ग

महात्मा गाँधी भारतीय स्वतंत्रता–संग्राम में जनसंपर्क हेतु हिन्दी को ही सर्वाधिक उपयुक्त भाषा समझते थे। महात्मा गाँधी के सपनों के भारत में एक सपना राष्ट्रभाषा के रूप में हिंदी को प्रतिष्ठित करने का भी था। उन्होंने कहा था कि राष्ट्रभाषा के बिना कोई भी राष्ट्र गूँगा हो जाता है। हिन्दी को राष्ट्रीय पहचान दिलाने में एक राजनीतिक शख्सियत के रूप में उनका महत्वपूर्ण योगदान है। महात्मा गाँधी की मातृभाषा गुजराती थी और उन्हें अंग्रेजी भाषा का उच्चकोटि का ज्ञान था किंतु सभी भारतीय भाषाओं के प्रति उनके मन में विशिष्ट सम्मान की भावना थी। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मातृभाषा में शिक्षा प्राप्त करे, उसमें कार्य करे किंतु देश में सर्वाधिक बोली जाने वाली हिन्दी भाषा भी वह सीखे, यह उनकी हार्दिक इच्छा थी। सन् 1906 ई. में उन्होंने अपनी एक प्रार्थना में कहा था– भारत की जनता को एक रूप होने की शक्ति और उत्कण्ठा दे। हमें त्याग, भक्ति और नम्रता की मूर्ति बना जिससे हम भारत देश को ज्यादा समझें, ज्यादा चाहें। हिन्दी एक ही है। उसका कोई हिस्सा नहीं है हिन्दी के अतिरिक्त दूसरा कुछ भी मुझे इस दुनिया में प्यारा नहीं है।

महात्मा गाँधी किसी भाषा के विरोधी नहीं थे। अधिक से अधिक भाषाओं को सीखना वह उचित समझते थे। प्रत्येक भाषा के ज्ञान को वह महत्वपूर्ण मानते थे किंतु उन्होंने निज मातृभाषा और हिन्दी का सदैव सबल समर्थन किया। एक अवसर पर उन्होंने कहा था– 'भारत के युवक और युवतियां अंग्रेजी और दुनिया की दूसरी भाषाएं खूब पढ़ें मगर मैं हरगिज यह नहीं चाहूंगा कि कोई भी हिन्दुस्तानी अपनी मातृभाषा को भूल जाय या उसकी उपेक्षा करे या उसे देखकर शरमाये अथवा यह महसूस करे कि अपनी मातृभाषा के जरिए वह ऊंचे से ऊंचा चिन्तन नहीं कर सकता। सन् 1917 ई. में कलकत्ता (कोलकाता) में कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर राष्ट्रभाषा प्रचार संबंध कांफ्रेन्स में तिलक ने अपना भाषण अंग्रेजी में दिया था। जिसे सुनने के बाद गाँधीजी ने कहा था– 'बस इसलिए मैं कहता हूं कि हिन्दी सीखनें की आवश्यकता है। मैं ऐसा कोई कारण नहीं समझता कि हम अपने देशवासियों के साथ अपनी भाषा में बात न करें। वास्तव में अपने लोगों के दिलों तक तो हम अपनी भाषा के द्वारा ही पहुंच सकते हैं।'

मार्च 1918 में इंदौर में सम्पन्न हुए हिंदी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन के सभापति बनाए गये। सभापति के रूप में उन्होंने अपने भाषण में जोरदार शब्दों में कहा, जैसे अंग्रेज अपनी मादरी जबान अंग्रेजी में ही बोलते और सर्वथा उसे ही व्यवहार में लाते हें, वैसे ही मैं आपसे प्रार्थना करता हूं कि आप हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनने का गौरव प्रदान करें। हिंदी सब समझते हैं। इसे राष्ट्रभाषा बनाकर हमें अपने कर्तव्य का पालन करना चाहिए। इसी भाषण में उन्होंने हिंदी के क्षेत्र–विस्तार की आवश्यकता की ओर ध्यान आकृष्ट करते हुए कहा, साहित्य का प्रदेश भाषा की भूमि जानने पर ही निश्चित हो सकता है। यदि हिंदी भाषा की भूमि सिर्फ उत्तर प्रांत की होगी, तो साहित्य का प्रदेश संकुचित रहेगा। यदि हिंदी भाषा राष्ट्रीय भाषा होगी, तो साहित्य का विस्तार भी राष्ट्रीय होगा। जैसे भाषक वैसी भाषा। भाषा–सागर में स्नान करने के लिए पूर्व–पश्चिम, दक्षिण–उत्तर से पुनीत महात्मा आएंगे, तो सागर का महत्व स्नान करने वालों के अनुरूप होना चाहिए। उपर्युक्त वक्तव्य से जाहिर है कि उत्तर प्रांत में हिंदी भाषा एवं साहित्य का जो उत्थान हो रहा था, उससे गांधी जी अवगत थे, लेकिन संतुष्ट नहीं, क्योंकि उनकी समझ में हिंदी का विस्तार उत्तर से दक्षिण तक, पूर्व से पश्चिम तक सबके लिए होना चाहिए। उसे एक सागर की तरह व्यापक होना चाहिए, न कि नदी की तरह संकुचित। इसी बात को बाद में उनके परम शिष्य विनोबा भावे ने इस प्रकार कहा, हिंदी को नदी नहीं, समुद्र बनना होगा, अर्थात् उत्तरी प्रांत में उभरा हिंदी नवजागरण एक उफनती नदी जैसा था, तो उसे राष्ट्रव्यापी सागर में परिणत करने का प्रयास गाँधी जी के द्वारा हुआ, यह मानने में कोई अतिवाद नहीं है।

इंदौर साहित्य–सम्मेलन के अवसर पर गाँधी जी ने हिंदी के प्रचार के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण कार्य का आरंभ कराया जिसका संबंध दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार से था। उन्होंने अपने उसी भाषण में यह कहा कि– सबसे कष्टदायी मामला द्रविड़ भाषाओं के लिए है। वहां तो कुछ प्रयत्न भी नहीं हुआ है। हिंदी भाषा सिखाने वाले शिक्षकों को तैयार करना चाहिए। ऐसे शिक्षकों की बड़ी ही कमी है। इस कथन से स्पष्ट है कि दक्षिण भारत में हिंदी के प्रचार को लेकर तब तक कोई विशेष कार्य नहीं हुआ था। दक्षिण भारतीयों के बीच हिंदी का कैसे प्रचार हो, यह गाँधी जी के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण समस्या थी। 1925 में हिन्दी प्रचार कार्यालय ,मद्रास के अपने दौरे में उन्होने सभी से सच्ची राष्ट्रीयता के विकास के लिए हिन्दी को आत्मसात करने का संदेश दिया। वे कहते थे कि उत्तर और दक्षिण के मेल के लिए भारत में मजदूर वर्ग से लेकर आभिजात्य वर्ग तक प्रत्येक भारतीय को अपनी प्रांतीयता की संकुचित भावना से परे हटकर राष्ट्रीयता की विस्तृत भावना को देखना चाहिए।

गाँधी ने अपने अनेक भाषणों और लेखों के माध्यम से लोगों को समझने का भरसक प्रयास किया कि यदि हमने अपनी मातृभाषा कि उन्नति नहीं की और इस पूर्वाग्रह से ग्रसित रहें कि अँग्रेजी के माध्यम से ही हम अपने उच्च विचार प्रकट कर सकते हैं और उनका विकास कर सकते हैं तो निरूसंदेह भारतीय सदा के लिए गुलाम बनकर रहा जाएंगे। विडम्बना तो यह है की भाषायी गुलामी हमें आनुवांशिक बीमारी के रूप में मिल गई हैं। आज भी एक अनुत्तरित आशा हाथ फैलाए बाट जोह रही हैं कि शायद हिन्दी को अपनों से इंसाफ जरूर मिलेगा।

गाँधी जी की संपर्क भाषा थी हिंदी

गिरिजा गणेशन

सेल रिफ्रेक्ट्री यूनिट, भिलाई

सत्य और अहिंसा के पथ प्रदर्शक राष्ट्रपिता का पूरा नाम मोहनदास करमचंद गाँधी था, वे भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के प्रमुख नेता थे। सत्याग्रह और अहिंसा के पथ पर चलकर उन्होंने भारत को आजादी दिलाकर संपूर्ण विश्व को नागरिक अधिकारों एवं स्वतंत्रता के प्रति आंदोलन के लिए प्रेरित किया। उन्हें आम जनता बापू के नाम से भी जानती थी। गाँधी जी को महात्मा के नाम से सबसे पहले 1915 में राजवैद्य जीवराम कालिदास ने संबोधित किया था। सुभाष चन्द्र बोस ने 6 जुलाई 1944 को रंगून रेडियो से गाँधी जी के नाम जारी प्रसारण में उन्हें राष्ट्रपिता कहकर संबोधित करते हुए आजाद हिंद फौज के सैनिकों के लिए उनका आशीर्वाद और शुभकामनाएँ मांगी थी। गाँधी जी ने प्रवासी वकील के रूप में दक्षिण अफ्रीका में भारतीय समुदाय के लोगों के नागरिक अधिकारों के लिए संघर्ष हेतु सत्याग्रह करना शुरू किया। 1915 में उनकी भारत वापसी हुई। भारत में उन्होंने यहाँ के किसानों, मजदूरों और श्रमिकों को अत्यधिक भूमिकर और भेदभाव के विरुद्ध आवाज उठाने के लिए एकजुट किया। 1912 में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की बागडोर संभालने के पश्चात उन्होंने देशभर में महिलाओं के अधिकारों का विस्तार, धार्मिक एवं जातीय एकता का निर्माण व आत्मनिर्भरता के लिए अस्पृश्यता के विरोध में अनेकों कार्यक्रम चलाये। गांधी जी ने ब्रिटिश सरकार द्वारा भारतीयों पर लगाये गए नमक कर के विरोध में 1930 में नमक सत्याग्रह और इसके बाद 1942 में अंग्रेजों भारत छोड़ो आंदोलन से खासी प्रसिद्धि प्राप्त की। दक्षिण अफ्रीका और भारत में विभिन्न अवसरों पर कई वर्षों तक उन्हें जेल में रहना पड़ा। गांधी जी ने हमेशा सभी परिस्थितियों में सत्य और अहिंसा का पालन किया। उन्होंने साबरमती के आश्रम में अपना जीवन गुजारा और परंपरागत भारतीय पोशाक धोती व सूत से बनी शाल पहनी जो वो स्वयं चरखे में कातकर बनाते थे। वे सादा शाकाहारी भोजन खाते और आत्मशुद्धि के लिए लंबे–लंबे उपवास रखते थे।

जब हम उन महामनावों को याद करते है जो गैर हिंदी भाषी होने के बावजूद हिंदी को विभिन्न भाषा ही नहीं बल्कि देश को जोड़ने की कड़ी मानते थे तो गाँधी जी का नाम सर्वप्रथम जहन में उभरता है। आजादी के आंदोलन के सबसे बड़े नेता गाँधी जी भले ही गुजराती भाषी थे लेकिन हिंदी को लेकर उनका योगदान अतुलनीय रहा। जब दक्षिण अफ्रीका से वे भारत आये तो उनका पहला आंदोलन चंपारण से शुरू हुआ। जब वे चंपारण गए तो सबसे पहले उनको भाषा की दिक्कत आई इस मामले में कुछ स्थानीय लोग ने उनकी मदद की लेकिन गांधी जी ने बहुत जतन से हिंदी सीखी। स्वतंत्रता आंदोलन से पहले गाँधी जी ने पूरे देश का भ्रमण किया और पाया की हिंदी ही एक ऐसी भाषा है जो एक दूसरे को जोड़ सकती है इसलिए उन्होंने हिंदी को राष्ट्रीय भाषा बनाने की सलाह दी। गाँधी जी ने पूरे राष्ट्रीय आंदोलन को हिंदी से जोड़ दिया। यही कारण था की अन्य भाषाभाषी नेताओं को भी हिंदी की शरण में आना पड़ा। गाँधी जी के ज्यादातर भाषण गुजराती टोन की हिंदी में होते थे और लोग उनसे बहुत प्रभावित होते थे। हिंदी के लेखक कवियों से भी गाँधी जी के रिश्ते बहुत सहज रहे, उन पर गाँधी जी का इतना प्रभाव पड़ा की उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचंद ने भी माना की उनका हिंदी और राष्ट्रीय आंदोलन से जुड़ाव गाँधी जी के कारण ही संभव हुआ।

गाँधी जी हिंदी लिखते और बोलते उसे वे हिंदी ही नहीं अपितु हिंदुस्तानी कहते थे। यह उस समय की संस्कृतनिष्ठ हिंदी से अलग थी। यह सहज सरल हिंदी थी जिसे गाँधी जी ने संपर्क भाषा के रूप में प्रयोग किया। उनका यह वाक्य बहुत प्रसिद्ध है की राष्ट्रीय व्यवहार में हिंदी को काम में लाना देश की उन्नति के लिए आवश्यक है। मध्य भारत हिंदी साहित्य समिति के प्रचार मंत्री अरविंद ओझा ने बताया की महात्मा गाँधी ने सन 29 मार्च 1918 को इंदौर में आठवें हिंदी साहित्य सम्मेलन की अध्यक्षता की थी। उन्होंने अपने उद्‌बोधन में पहली बार आह्वान किया की हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा का दर्जा मिलना चाहिए।

गाँधी जी राष्ट्रीय नेता ही नहीं थे अपने समय के अच्छे पत्रकार भी थे। हिंदी, अंग्रेजी और गुजराती भाषाओं में उन्होंने कई अखबार भी निकाले। हिंदी में उन्होंने दो अखबार भी निकाले, नवजीवन और हरिजन सेवक। वे अपने ज्यादातर पत्रों का जवाब हिंदी में देना पसंद करते थे। डॉ शशिभूषण का कहना था की हिंदी अगर राष्ट्रभाषा बनती है तो उसमें गाँधी जी का बड़ा योगदान है।

दे दी हमें आजादी बिना खड्ग बिना ढाल

साबरमती के संत तू ने कर दिया कमाल

उच्च शिक्षा संबंधी गाँधी चिंतन की प्रासंगिकता

डॉ. अबरीश त्रिपाठी
सहा. प्राध्यापक हिंदी, शास. महा. मचांदुर, दुर्ग

जिस प्रकार एक पौधा वट वृक्ष की तरह विशाल तभी बनता है जब उसकी जड़ें जमीन को भेदते हुए गहरे धँसते जाए पैठते जाए। ठीक उसी प्रकार जैसे जैसे गाँधी भारतीय संस्कृति, परंपरा एवं जीवन मूल्यों को आत्मसात करते गए , भौगोलक सीमाओं को पार करते गए उनका सामाय व्यक्तित्व विराट होता गया। उन्होंने न केवल भारत अपितु विश्व समुदाय से मानव मात्र के लिए उपयोगी मूल्यों का समाहार किया। इसीलिए पृथ्वी के दिक–दिगंत तक आज भी गाँधी आदरणीय और अनुकरणीय हैं। उन्होंने सत्याग्रह की प्रेरणा मीरा से और चरखे का प्रयोग कबीर से ग्रहण किया तो तुलसी से रामराज्य के स्वप्न को अंगीकार किया। पराई पीर को जानने–समझने का आदर्श नरसी मेहता से सीखा। बुद्ध और महावीर से अहिंसा पालन को अपनाया तो थोरो से सविनय अवज्ञा के गुर को हासिल किया।

अपने अत्यंत सक्रिय और व्यापक जीवन यापन के दौरान उन्होंने व्यक्ति के जीवन के लगभग सभी आयामों पर गहन चिंतन किया है। मातृभाषा में अध्ययन हो चाहे प्राथमिक शिक्षण या युवाओं से जुड़ा हुआ उच्च शिक्षा के विभिन्न आयाम, गांधी जी ने इन सब मुद्दों पर विशद विचार कया है। उच्च शिक्षा पर गाँधी जी ने 'हरिजन, हिंदी नवजीवन एवं यंग इंडया' के संपादकीय में विचार कया है। इन पत्र–पत्रिकाओं में तथा 'सच्ची शिक्षा ' नामक लेख एवं 'रचनात्मक कार्यक्रम 'के अंतर्गत उच्च शिक्षा से संबंधित महात्मा गाँधी के विचार उच्च शिक्षा की एक मुकम्मल तस्वीर पेश करते हैं।

गांधी चिंतन के आलोक में आज जब हम उच्च शिक्षा पर विचार कर रहे हैं तो हमें वर्तमान समय में अकादमिक जगत की चुनौतियों को मोटे तौर पर देखना समीचीन होगा । मुख्य रूप से हमारे समक्ष चार प्रकार की चुनौतियां रेखांकित की जा सकती हैं। पहली चुनौती युवाओं के भविष्य निर्माण की है। किस प्रकार युवा अध्ययन के द्वारा अपने स्वतंत्र एवं स्वायत्त व्यक्तित्व को बना पाएं। दूसरी चुनौती पहले से ही जुड़ी है। किस प्रकार औद्योगिक जगत युवाओं की शिक्षा में सहभागी बने और देश के युवाओं को ऐसी शिक्षा मिले ताकि उद्योगों के नियोजन में वे अपना समुचित योगदान दे सकें। तीसरी चुनौती शिक्षित युवा के सजग नागरिक बन देश और समाज के निर्माण में अपनी भूमिका निभाने हेतु तैयार करने की है । चौथी चुनौती समाज में ज्ञान की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित करने की है। किस प्रकार ज्ञान को कर्म से जोड़ा जाए और प्रत्येक कर्म के महत्व को प्रतिष्ठित किया जाए। इन चुनौतियों पर गौर करें तो हम पाएंगे कि आज से लगभग 100 साल पहले गांधीजी के उच्च शिक्षा चिंतन के केंद्र में भी कमोबेश यही चुनौतियां ही थी शिक्षा उनके लिए वह साधन था जो युवाओं में स्वतंत्र चेतना विकसित करें और उन्हें स्वावलंबी बनाकर देश के स्वाधीनता आंदोलन को गति दे सकें।

शिक्षा पर विचार करते हुए गांधीजी विदेशी भाषा के विकास और देशी भाषाओं की उपेक्षा को भारत का सबसे बड़ा दुर्भाग्य मानते हैं। 'हिंदी नवजीवन' में 2 सितंबर 1921 को लिखते है '' विदेशी माध्यम ने हमारे बालकों को अपने ही घर में पूरा विदेशी बना दिया है। यह वतमान शिक्षा प्रणाली का सबसे बड़ा करूण पहलू है विदेशी माध्यम ने हमारी देशी भाषाओं की प्रगति और विकास को रोक दिया है ।'' 1928 में हिंदी नवजीवन में ही उन्होंने ऐसे लोगों की उन मान्यताओं को खारिज किया है की उच्च शिक्षा में ज्ञान केवल विदेशी भाषा में ही प्राप्त किया जा सकता है या यह कि वैज्ञानिक विचार स्वतंत्रता की चेतना आदि विदेशी भाषा से ही संभव है। गांधी स्पष्ट रूप में लिखते हैं कि भाषा तो अपने बोलने वालों के चरित्र और विकास की चेतना आदि विदेशी भाषा से ही संभव है। गांधी स्पष्ट रू॰ से लिखते है कि भाषा तो अपने बोलने वालों के चरित्र और विकास का सच्चा प्रतिबिंब है। विदेशी शासन के अनेक दोषों में देश के नौजवानों पर डाला गया विदेशी भाषा के माध्यम का घातक बोझ इतिहास में एक सबसे बड़ा दोष माना जाएगा । '' इस माध्यम ने राष्ट्र की शक्ति हर ली है विद्यार्थियों की आयु घटा दी है उन्हें आम जनता से दूर कर दया है और शिक्षा को बिना कारण खर्चीला बना दिया है।'' गांधी जी ने शिक्षा को साधन मानकर मनुष्य की शिक्षा के कई साधन में से केवल एक साधन माना. वह शिक्षा को उपादन के साधन के रूप में ही देखते हैं वह कहते हैं कि जिस देश में लाखों आदमी भूख से मरते हैं वहां बुद्धि पूर्वक किया जाने वाला श्रम ही सच्ची प्राथमिक शिक्षा या प्रौढ़ शिक्षा है।''

31 जुलाई 37 को 'हरिजन' में गाँधी जी लिखते हैं–'' मैं कॉलेज की शिक्षा में कायापलट करके उसे राष्ट्रीय आवश्यकताओं के अनुकूल बनाऊँगा। यंत्रविद्या के तथा अन्य इंजीनयरों के लिए डिग्रियां होंगी। वे भिन्न–भिन्न उद्योगों के साथ जोड़ दिए जाएंगे और उन उद्योगों को जिन स्नातकों की जरूरत होगी उनके प्रशिक्षण का खर्च वे उद्योग ही देंगे।'' इनके विचारानुकूल देश की आजादी के बाद टाटा–बिड़ला ने ऐसी इंजीनियरिंग संस्थान खोले भी जिसमें कम से कम पैसे में भारतीय प्रतिभाओं का पल्लवन हुआ। गाँधी जी इसी तरह वाणिज्य–व्यवसाय वालों को अपना कॉलेज चलाने की बात करते हैं। वर्तमान समय में हम शिक्षा के क्षेत्र में निजीकरण के बढ़ते प्रभावों को देख सकते हैं । प्राथमिक शिक्षा से लेकर उच्च शिक्षा तक उद्योग एवं व्यापारिक घराने व्यापक रूप से शैक्षणिक संस्थानों का संचालन कर रहे हैं। पर ये संचालन गाँधी के विचार से कोसों दूर व्यक्तिगत स्वार्थ और पूँजी कमाने की लालसा पर आधारत है।

गाँधी जी उच्च शिक्षा को स्वावलंबी बनाने पर जोर देते थे। उनकी स्पष्ट मान्यता थी कि सैद्वान्तिक ज्ञान का व्यवहारिक ज्ञान से प्रत्यक्ष संबंध हो। स्नातक विद्यार्थी, अपने पैरों पर खड़ा हो सके ऐसी शिक्षा होनी चाहिए।

गाँधी जी ने विश्वविद्यालयों के निर्माण, उसकी कार्यप्रणाली और संचालन पर गहन विचार प्रस्तुत किए। आजादी मिलने के बाद 2 नवंबर1947 को उन्होंने हरिजन में लिखा–''विश्वविद्यालय चोटी पर होता है। शानदार चोटी तभी कायम रह सकती है जब बुनियाद अच्छी हो.....हम राजनीतिक दृष्टि से तो स्वतंत्र हो गए परंतु पश्चिम के सूक्ष्म प्रभाव से मुक्त नहीं हुए हैं।'' गाँधी जी स्वतंत्र चेतना वाले मेधा के निमाण और विकास में उच्च शिक्षा एवं विश्वविद्यालय की महत्वपूण भूमिका को स्वीकार करते थे।

बापूजी के साथ हिंदी – चर्चा

मदालसा नारायण

पूज्य पितामहरूवरूप बापूजी वर्धा के हमारे निवास–स्थान 'जीवन–कुटीर' में आकर कुछ दिन रहे थे, सन् 1946 में। राष्ट्रभाषा हिंदी–हिंदुस्तानी के रूप का स्पष्टीकरण करने ही दृष्टि से वर्धा शिक्षा मण्डल के अंतर्गत संचालित गो.से. अर्थ वाणिज्य महाविद्यालय के विशाल भवन में सम्मेलन का आयोजन हुआ था। राष्ट्रपिता बापूजी ही सम्भवतः अध्यक्ष थे और जीवन–कुटीर से सम्मेलन–भवन तक अवसर पैदल ही आया–जाया करते थे। तब उनके साथ आने–जाने का अवसर मुझे भी मिल जाता था।

सम्मेलन के घर लौटते हुए एक दिन बापूजी के साथ की चर्चा में मैं भी शामिल हो गई और मैंने कहा–'बापूजी भाषा कैसी हो? इस पर बहुत अधिक चर्चा किसलिए होनी चाहिए? जैसे लोग आपस में अधिक मिलने–जुलने लगते हैं, वैसे ही भाषा अपने–आप बनने लग जाती है। भाषा तो मानव के लिए मनोभाव व्यक्त करने का साधन ही नही तो है न? इसलिए पहले तो यह स्पष्ट होना चाहिए कि हमारे राष्ट्र की सामाजिक भूमिका पहले क्या थी, अब क्या है, और आगे क्या होगी? विभिन्न भाषा–भाषी लोग आपस में आज कितना मिलते हैं और आगे किस तरह से उनका अधिक मिलना–जुलना होगा? उसी तरह का असर सबकी बोली पर और सामाजिक भाषा पर उतरेगा। अतः भाषा से ज्यादा विचार–चर्चा तो हमारे आपस का मेल–जोल किस तरह से बढ़ेगा, इस विषय की स्पष्टता के लिए होनी चाहिए और आज राष्ट्र में ज्यादा से ज्यादा संख्या के लोग जिस भाषा को आसानी से समझ बोल सकते हैं, वहीं राष्ट्रभाषा समझी जानी चाहिए। मेरी समझ में तो इतना ही आता है।' तब बापूजी ने मुझे कहा–'पहले तो हिंदी–भाषी तुम लोगों को उर्दू और एक कोई दक्षिणी भाषा जरूर सीख लेनी चाहिए, फिर और बातें ज्यादा अच्छी तरह समझ सकोगी।' तब से अब तक मैं यही प्रतीक्षा कर रही हूं कि कब कुछ समय मिले कि मैं अपने राष्ट्रपिता के आदेश के अनुरूप उर्दू और एक कोई दक्षिण भी पढ़ना–लिखना सीखने लग जाऊं। मेरी मातृभाषा राजस्थानी है। परिवार की भाषा हिंदी है। प्राथमिक शिक्षा गुजराती में हुई। बाद में पूज्य विनोबाजी के पास मराठी में 'श्रीमद्ज्ञानेश्वरी' का अभ्यास किया। ये चार भाषाएँ तो मुझे मेरी अपनी मातृभाषा जैसी ही प्यारी लगती हैं। राष्ट्रभाषा तो आज हिंदी ही हो सकती है। ऐसा भारत की आज की भूमिका और प्रचीन परंपरा से प्रतीत होता है।

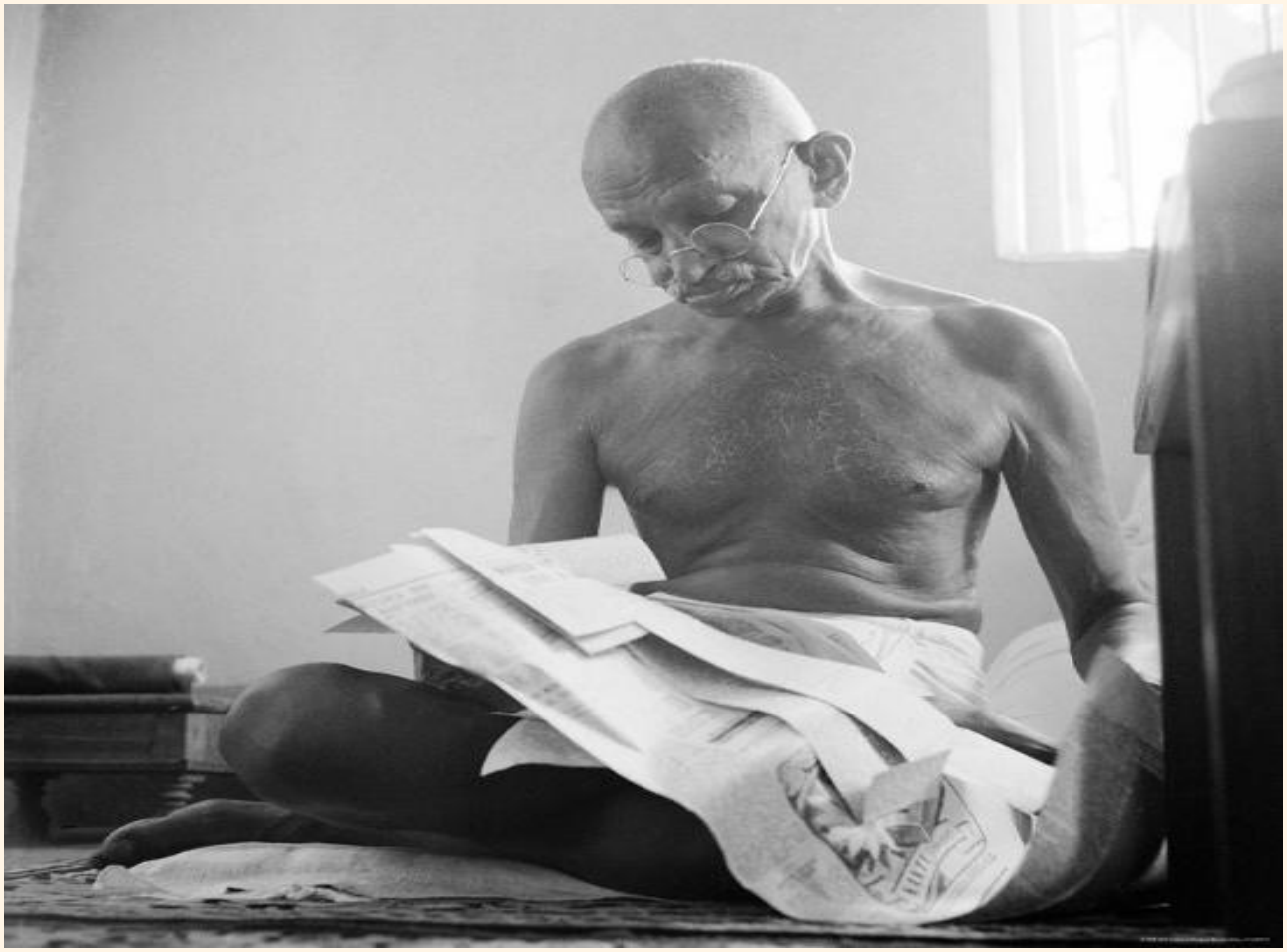

आजादी के पूर्व देश के प्रतिष्ठित समाचार पत्र-पत्रिकाओं (हिन्दू, प्रताप, नवजीवन, यंग इंडिया, हरिजन सेवक, इण्डियन ओपीनियन,हिन्द स्वराज आदि) में प्रकाशित

हिंदी के समर्थन में

गाँधीजी द्वारा लिखे आलेख एवं पत्र

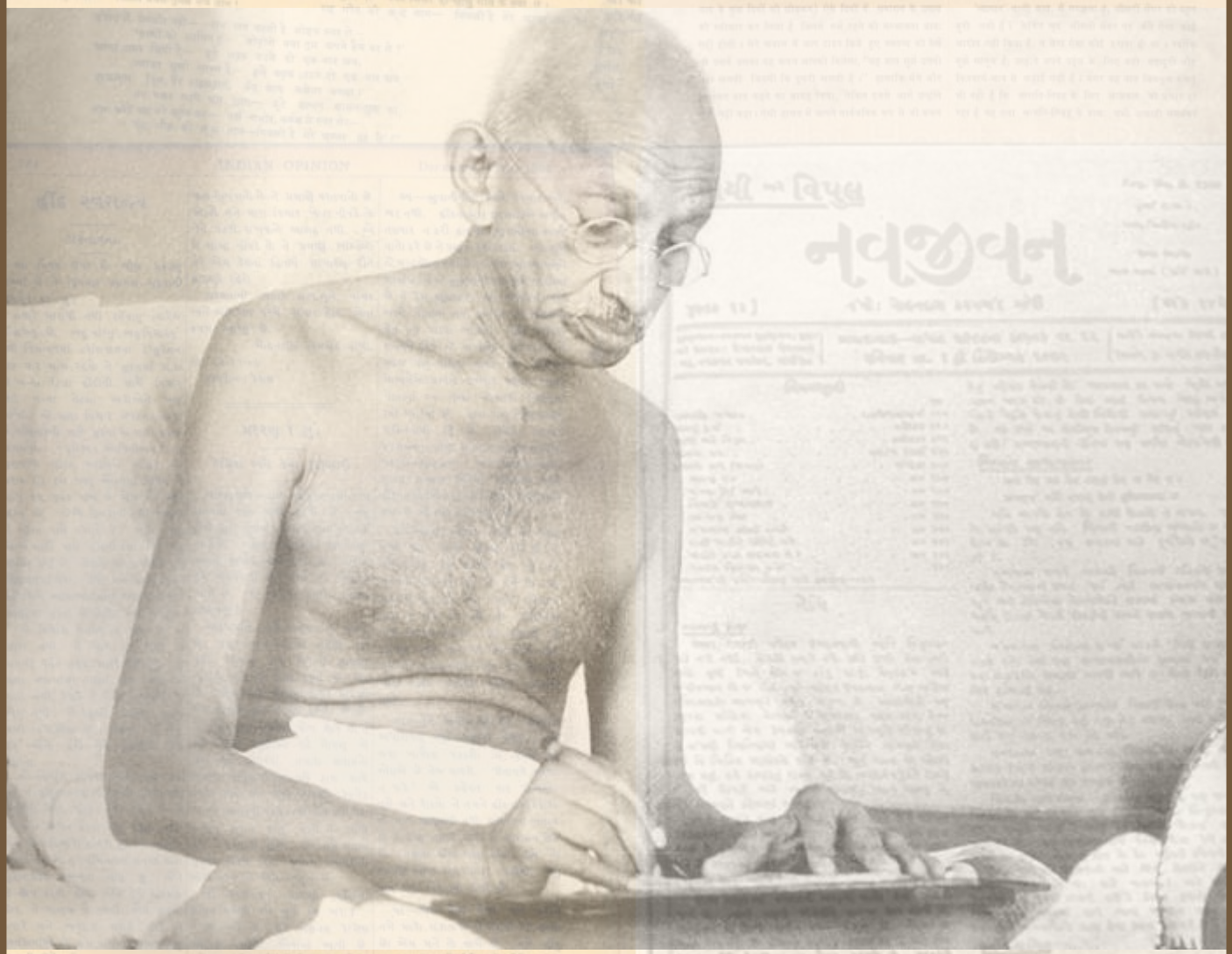

अँग्रेजी की अपेक्षा हिंदी सीखना बहुत सरल

प्रताप (कानपुर) : 28.5.1917

हिंदी ही हिंदुस्तान के शिक्षित समुदाय की सामान्य भाषा हो सकती है, यह बात निर्विवाद सिद्ध है। यह कैसे हो, केवल यही विचार करना है। जिस स्थान को आजकल अंग्रेजी भाषा लेने का प्रयत्न कर रही है। और जिसे लेना उसके लिए असम्भव है, वही स्थान हिंदी को मिलना चाहिए, क्योंकि हिंदी का उस पर पूर्ण अधिकार है। यह स्थान अंग्रेजी को नहीं मिल सकता, क्योंकि वह विदेशी भाषा है और हमारे लिए बड़ी कठिन है। अंग्रजी की अपेक्षा हिंदी सीखना बहुत सरल है। हिंदी बोलनेवालों की संख्या प्रायः साढ़े छह करोड़ है। बंगला, बिहारी, उड़िया, मराठी, गुजराती, राजस्थानी, पंजाबी और सिंधी की बहनें हैं। इन भाषाओं के बोलनेवाले थोड़ी बहुत हिंदी समझ तथा बोल लेते हैं। इन सबको मिलाने से संख्या प्रायः 22 करोड़ हो जाती है। जिस भाषा का इतना प्रचार है, उसकी बराबरी करने के लिए अंग्रेजी, जिसे एक लाख भी हिंदुस्तानी ठीक–ठीक नहीं बोल सकते, क्यों कर समर्थ हो सकती है? हमारी भीरूता, अश्रद्धा और हिंदी भाषा के गौरव का अज्ञान है। यदि हम भीरूता छोड़ दें, श्रद्धावान बनें, हिंदी का गौरव समझ लें तो हमारी राष्ट्रीय और प्रान्तिक परिषदों तथा सरकारी विधान–सभाओं का भी काम हिंदी में चलने लगेगा। आरम्भ प्रांतिक राष्ट्रीय मण्डलों से होना आवश्यक है। इस कार्य में यदि कुछ कठिनाई भी है, तो वह प्रायः तमिल आदि द्रविड़ भाषा–भाषियों के लिए है, पर इसकी भी औषधि हमारे हाथ में हैं। हिंदी के उत्साही, साहसी, स्वाभिमानी, जोशीले पुरूषों को बिना मूल्य हिंदी की शिक्षा देने के लिए मद्रास आदि प्रांतों में भेजा जाना चाहिए। वे हिंदी के पराक्रमी प्रचारक बन जाएं तो अल्पकाल ही में मद्रास आदि प्रांतों के शिक्षित हिंदी सीख लेगे। यदि हममें उचित जोश हो तो इस प्रश्न का उत्तर केवल त्रैराशिक पर ही रहता है। जितने अधिक शिक्षक भेजे जाएं, उतना ही शीघ्र हिंदी का प्रचार हो जाएगा। शिक्षकों के भेजने के साथ ही साथ स्वयं शिक्षण–पुस्तकें भी बनानी चाहिए। इन पुस्तकों का प्रसार बिना मूल्य होना आवश्यक है। भाषा सीखने की आवश्यकता बतलाने के लिए प्रतिष्ठित वक्ताओं को भेजना भी आवश्यक है। जैसा प्रचार द्रविड़ देश में करना आवश्यक है, वैसा ही प्रचार बम्बई आदि प्रदेशों में भी उचित है। मराठी, गुजराती भाषा–भाषियों के लिए भी हिंदी पुस्तकें तैयार करवानी चाहिए और उन प्रदेशों में भी प्रचारक भेजे जाने चाहिए। इस कार्य में द्रव्य की आवश्यकता है। हमारा धनाढ्य समुदाय इस काम को बोझ–रूप न समझे। उसका यह कर्तव्य है कि इस महान कार्य में वह सहायता दें। प्रबंध करने के लिए एक छोटी–सी समिति बनाने की आवश्यकता है। इतना ध्यान रखना उचित है कि इस समिति में केवल कार्य करने वाले ही चुने जाएं। इस निवेदन में एक गर्भित बात आ जाती है। वह यह है कि हिंदी और उर्दू के बीच में भेद नहीं रखा गया है। वास्तव में हम अपने इस्लामी भाइयों से क्यों झगड़ें? वे उर्दू लिपि में पढ़ें हममें से थोड़े लोग उर्दू लिपि भी जानते हैं तथा और अधिक लोग सीख लेंगे। अब तो नागरी लिपि से सारे भारत वर्ष में भाषा का प्रचार करना एक मुख्य कर्तव्य है।

राष्ट्रभाषा के लक्षण

तब राष्ट्रभाषा के क्या लक्षण होने चाहिए? इस पर विचार करें :–

1. वह भाषा सरकारी नौकरों के लिए आसान होनी चाहिए।
2. उस भाषा के द्वारा भारत का आपसी धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक कामकाज शक्त होना चाहिए।
3. उस भाषा को भारत के ज्यादातर लोग बोलते हों।
4. वह भाषा राष्ट्र के लिए आसान होनी चाहिए।
5. उस भाषा का विचार करते समय क्षणिक या अस्थायी स्थिति पर जोर न दिया जाए।

अंग्रेजी भाषा में इनमें से एक भी लक्षण नहीं है। पहला लक्षण–मुझे अंत में रखना चाहिए था। परन्तु मैंने उसे पहले रखा है, क्योंकि वह लक्षण अंग्रेजी भाषा में दिखाई पड़ सकता है। ज्यादा सोचने पर हम देखेंगे कि आज भी राज्य के नौकरी के लिए वह भाषा आसान नहीं है। वहां के शासन का ढांचा इस तरह का सोचा गया है कि अंग्रेज कम होंगे, यहां तक कि अंत में वाइसराय और दूसरे अंग्रेज अंगुलियों पर गिनने लायक रहेंगे। अधिकतर कर्मचारी आज भी भारतीय हैं और वे दिन–दिन बढ़ते जायेंगे। यह तो सभी मानेगे, कि इस वर्ग के लिए अंग्रेजी भारत की किसी भी भाषा से ज्यादा कठिन है। दूसरे लक्षण पर विचार करते समय हम देखते हैं कि जब तक जनसाधारण अंग्रेजी

बोलनेवाले न हो जाएं, तब तक हमारा धार्मिक व्यवहार अंग्रेजी में नहीं चल सकता। इस हद तक अंग्रेजी भाषा का समाज में फैल जाना असम्भव मालूम होता है। तीसरा लक्षण अंग्रेजी में नहीं हो सकता, क्योंकि वह भारत के अधिकतर लोगों की भाषा नहीं है। चौथा लक्षण भी अंग्रेजी में नहीं है, क्योंकि सारे राष्ट्र के लिए वह इतनी आसान नहीं है। पांचवे लक्षण पर विचार करते समय हम देखते हैं कि अंग्रेजी भाषा की आज जो शक्ति है, वह क्षणिक है। स्थायी स्थिति तो यह है कि भारत में सार्वजनिक कामों में अंग्रेजी भाषा की जरूरत सदा कर रहेगी। अंग्रेजी साम्राज्य से व्यवहार करने में अवश्य उसकी जरूरत पड़ेगी, अर्थात वह साम्राज्य के अंतर्गत पारस्परिक राजनीतिक व्यवहार–डिप्लोमैसी–की भाषा होगी, यह सवाल जुदा है। उसके लिए अंग्रेजी जरूर रहे। हमें अंग्रेजी भाषा से कुछ भी द्वेष नहीं है। हमरा आग्रह तो इतना ही है कि उसे मर्यादा से बार न जाने दिया जाए।

राष्ट्र की भाषा अंग्रेजी नहीं हो सकती। अंग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाना कृत्रिम विश्वभाषा 'एस्पेरेंटो' दाखिल करने जैसी बात है। अंग्रेजी राष्ट्रभाषा हो सकती है, यह कल्पना उसी प्रकार हमारी कमजोरी की सूचक है, जिस प्रकार 'एस्पेरोंटों' को विश्वभाषा बनाने का प्रयत्न अज्ञान का सूचक है।

हिंदी और उर्दू अलग नहीं -

ऐसी दलील दी जाती है कि हिंदी और उर्दू दो अलग भाषाएं हैं यह दलील सही नहीं है। उत्तर भारत में मुसलमान और हिंदू दोनों एक ही भाषा बोलते हैं। भेद पढ़े–लिखे लोगों ने डाला है इसका अर्थ यह है कि हिंदू शिक्षित वर्ग ने हिंदी को केवल संस्कृतमय बना दिया है। इस कारण कितने ही मुसलमान उसे समझ नहीं सकते। लखनऊ के मुसलमान भाइयों ने उस उर्दू में फारसी भर दी है और उसे हिंदुओं के समझने के अयोग्य बना दिया है। ये दोनों केवल पंडिताऊ भाषाएं है और इनको जनसाधारण में कोई स्थान प्राप्त नहीं हैं। मैं उत्तर में रहा हूं, हिंदू–मुसलमानों के साथ खूब मिलाजुला हूं, और हिंदी भाषा का ज्ञान बहुत कम होने पर भी मुझे उन लोगों के साथ व्यवहार रखने में जरा भी कठिनाई नहीं हुई है। जिस भाषा को उत्तरी भारत में आम लोग बोलते हैं उसे चाहे उर्दू कहें चाहें हिदी, दोनों एक ही भाषा की सूचक है। यदि उसे फारसी लिपि में लिखिए तो वह उर्दू भाषा के नाम से पहचानी जाएगी और नगारी लिपि में लिखें तो वह हिंदी कहलाएगी। जानते हैं तथा और अधिक लोग सीख लेंगे। जब तक इस्लामी भाई नागरीलिपि नहीं पढ़ लेंगे, तब तक हमारे राष्ट्रीय कार्य दोनों लिपियों में हुआ करेंगे। कैसे ही क्यों न हो, इस प्रश्न का निपटारा हम इस्लामी भाइयों के साथ मातृ–भाव से कर सकते हैं। अब तो नागरी लिपि से सारे भारतवर्ष में भाषा का प्रचार करना एक मुख्य कर्तव्य है। यह लेख कई पत्रों में प्रकाशनार्थ भेजा गया था।

लिपि का प्रश्न-

अब रहा लिपि का झगड़ा। अभी कुछ समय तक तो मुसलमान लड़के फारसी लिपि में अवश्य लिखेंगे और हिंदू अधिकतर देवनागरी में लिखेंगे। अधिकतर इसलिए कहता हूं कि हजारों हिंदू आज भी अपनी हिंदी फारसी लिपि में लिखते हैं और कितने ही तो देवनागरी लिपि नहीं जानते। अंत में जब हिंदू–मुसलमानों में एक–दूसरे के प्रति तनिक भी संदेह की भावना नहीं रह जायेगी और अविश्वास के सारे कारण दूर हो जाऐगें, तब जिस लिपि का ज्यादा जोर रहेगा, वह लिपि ज्यादा लिखी जाएगी और वही राष्ट्रीय लिपि हो जाएगी। इस बीच जिन मुसलमान भाईयों और हिंदूओं को फारसी लिपि में अर्जी लिखनी होगी, उनकी अर्जी सरकारी कार्यालयों में स्वीकार की जानी चाहिए। इस पांच लक्षणों से युक्त हिंदी की होड़ करनेवाली और कोई भाषा नहीं है। हिंदी के बाद दूसरा दर्जा बंगला का है। फिर भी बंगाली लोग बंगाल के बाहर हिंदी का ही उपयोग करते हैं। हिंदी–भाषी जहां जाते हैं, वहां हिंदी का ही उपयोग करते हैं और इससे किसी को अचम्भा नहीं होता। हिंदी–भाषी धर्मोपदेश और उर्दू–भाषी मौलवी सारे भारत में अपने भाषाण हिंदी में ही देते हैं और अपढ़ जनसाधारण उन्हें समझ लेते हैं। यहां अपढ़ गुजराती भी उत्तर में जाकर थोड़ा–बहुत हिंदी का उपयोग कर लेते हैं, वहां उत्तर का 'भैया' बम्बई के सेठ की नौकरी करते हुए भी गुजराती बोलने से इंकार करता है और सेठ 'भैया' के साथ टूटी–फूटी हिंदी बोल लेता है। मैंने देखा है कि ठेठ द्रविड़ प्रांत में भी हिंदी की आवाज सुनाई देती है। यह कहना ठीक नहीं कि मद्रास में तो अंग्रेजी से काम चलता है, वहां भी मैंने अपना सारा काम हिंदी में चलाया है। सैंकड़ों मद्रासी मुसाफिरों को मैंने दूसरे लोगों से हिंदी में बातचीत करते सुना है। इसके सिवा, मद्रास के मुसलमान भाई तो हिंदी भाषा अच्छी तरह जानते हैं। इस तरह हिंदी भाषा राष्ट्रभाषा बन चुकी है। हमने वर्षों पहले उसका राष्ट्रभाषा के रूप में उपयोग किया है। उर्दू भी हिंदी की इस शक्ति से ही पैदा हुई है।

यदि भविष्य में हिदी को राष्ट्रभाषा का स्थान दिया जाता है, तो हर मद्रासी स्कूल में हिंदी पढ़ाई जाएगी और मद्रास का दूसरे प्रांतों

से विशेष परिचय होने की संभावना बढ़ जाएगी। अंग्रेजी भाषा द्रविड़ जनता में प्रवेश नहीं पा सकी है। परन्तु हिंदी को उनमें प्रवेश करने में देर नहीं लगेगी, तेलगु–भाषी लोग आज ऐसा प्रयत्न कर भी रहे हैं। यदि यह सम्मेलन इस बारे में कि राष्ट्रभाषा कैसी होनी चाहिए, यह स्थिर कर सके, तब तो इस काम को पूरा करने के उपाय करने की जरूरत भी मालूम होगी। जैसे उपाय मातृभाषा के बारे में बताए गए हैं, वैसे ही आवश्यक परिवर्तन के साथ राष्ट्रभाषा के बारे में उपयुक्त हो सकते हैं। गुजराती को शिक्षा का माध्यम बनाने में खास तौर पर हमको ही प्रयत्न करना पड़ेगा। परन्तु राष्ट्रभाषा के आंदोलन में तो सारा भारत भाग लेगा।

राष्ट्रभाषा का प्रयोग न करना राष्ट्र की हत्या-

देश–सेवा करने के लिए उत्सुक सब हैं, परंतु राष्ट्र–सेवा तब तक संभव नहीं, जब तक कोई राष्ट्रभाषा न हो। दुःख की बात है कि हमारे बंगाली भाई राष्ट्रभाषा का प्रयोग न करके राष्ट्रीय हत्या कर रहे हैं, जबकि इसके बिना देश की आम जनता के ह्रदयों तक नहीं पहुंचा जा सकता। इस अर्थ में बहुत लोगों के द्वारा हिंदी को काम में लाया जाना मानवतावाद के क्षेत्र की बात हो जाती है।

अंग्रेजी का एक भी शब्द सुनाई न दें-

पहली माता (अंग्रेजी) से हमें जो दूध मिल रहा है, उसमें जहर और पानी मिला हुआ है, और दूसरी माता (मातृभाषा) में शुद्ध दूध मिल सकता है, बिना इस शुद्ध दूध के मिले हमारी उन्नति होना असम्भव है। पर जो अंधा है, वह देख नही सकता गुलाम यह नहीं जानता कि अपनी बेड़ियां किस तरह तोड़े। पचास वर्षों से हम अंग्रेजी के मोह में फंसे हैं। हमारी प्रजा अज्ञान में डूबी रही है। सम्मेलन में इस ओर विशेष रूप से खयाल रखना चाहिए। हमें ऐसा उद्योग करना चाहिए कि एक वर्ष में राजकीय सभाओं में, कांग्रेस में, प्रांतीय सभाओं में और अन्य सभा–समाज और सम्मेलनों में अंग्रेजी का एक भी शब्द सुनाई न पड़े।

हिंदी और केवल हिंदी ही हमारी राष्ट्रभाषा-

तमिल में आपके सामने न बोल सकने के लिए मैं आपसे बहुत–बहुत माफी चाहता हूं। लेकिन मुझे आपसे अंग्रेजी में बोलना पड़ रहा है, इसकी जिम्मेदारी से मैं आपको भी पूरी तरह बरी नहीं कर सकता। आपमें से जिन लोगों को पर्याप्त शिक्षा प्राप्त हुई है, वे यदि यह समझ लेते कि हिंदी और केवल हिंदी ही भारत की राष्ट्रभाषा बन सकती है, तो आप इस समय तक इसे किसी–न–किसी तरह सीख लेते। हम अपनी गलतियां अब भी सुधार सकते हैं। अब आपको मद्रास तथा कुछ अन्य भाषाओं की तुलना में इस भाषा को सीखना सबसे सरल है। मुझे तमिल भाषा का कुछ ज्ञान है, यह अत्यंत सुंदर और सुमधुर भाषा है, लेकिन इसका व्याकरण सीखना बहुत मुश्किल है। हिंदी का व्याकरण सीखना तो बच्चों का खेल है। इसलिए मैं आशा करता हूं कि जो अवसर आपको मिला है, उसका आप सब लोग लाभ उठायेगें।

हिंदी की खूबियाँ और उसका व्यापक प्रसार-

आज हम जिस कार्य के लिए एकत्रित हुए हैं, उसकी दृष्टि से मुझे हिंदी में बोलना चाहिए। लेकिन इस समय इस समय में जानबूझकर हिंदी में नहीं बोल रहा हूं, क्योंकि मैं इस भाषा की खूबियां आपको समझाना चाहता हूं, ये खूबियां मैं आपको गुजराती में समझाऊगां। मेरा ख्याल है कि गुजराती भाषा में इन्हें बता सकने की मुझमें विशेष शक्ति है। हिंदुस्तान में इस समय जो सत्याग्रह आंदोलन चल रहा है, हिंदी भाषा का आग्रह भी उसमें आ जाता है। सत्य का आग्रह करना, सत्याग्रह की मुख्य बात है और यदि हम सत्य पर विचार करने बैठे, तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि ऐसी एक भी अन्य देसी भाषा नहीं हैं जो हिंदी के साथ स्पर्धा कर सके। इस विचार से राष्ट्रीय भाषा के रूप में हमें हिंदी में ही बोलना पड़ेगा। हिंदी भाषा क्या है, हमें इस बात पर थोड़ा विचार करना होगा। मैं यह नहीं मानता कि हिंदी, अर्थात वह भाषा जिसमें संस्कृत के शब्द आते हैं, कृत्रिम भाषा है। इसी तरह यह भी नहीं मानता कि उर्दू, जिसमें फारसी के शब्द आते हैं, हिंदी नहीं हैं। हम राष्ट्रीय भाषा के रूप में जिस भाषा को बोलना चाहते हैं वह हिंदी और उर्दू का मिलाजुला रूप है। बहुत करके यह भाषा इस समय बिहार, दिल्ली तथा पंजाब में बोली जाती है। हिंदू और मुसलमान दोनों एक नहीं हैं, जब यह भावना लोगों के दिलों में घर करने लगी और जब दोनों के बीच द्वेष–भाव उत्पन्न हुआ, तब इन दोनों भाषाओं में रस्साकशी होने लगी। कुछ लोगों ने जिसमें संस्कृत के शब्द होते हैं, उस भाषा को ही हिंदी कहा तथा कुछ ने फारसी और अरबी भाषा के शब्दों से युक्त भाषा को ही उर्दू कहा। लेकिन सामान्य हिंदू और मुसलमान जो बोलते हैं, वह भाषा तो ऐसी नहीं है। हम चाहे जिस जगह जाएं और हिंदू–मुसलमानों को बोलते हुए सुनें तो देखेंगे कि उसमें संस्कृत, फारसी तथा अरबी के शब्द आते हैं, और हिंदू हो अथवा मुसलमान, कोई भी उनका त्याग नहीं करते। ऐसी मिश्रित भाषा को

स्वीकार करने से हम हिंदु और मुसलमानों का ह्रदय स्वच्छ हो जाएगा। इस तरह की जिस भाषा की मैं चर्चा कर रहा हूं, उसे उत्तर अथवा दक्षिण का प्रत्येक मुसलमान भाई समझ सकता है, हांलाकि उसे अपने प्रांत की भाषा आती है।

अंग्रेजी बनाम हिंदी-

हाल ही में हुए साहित्य–सम्मेलनों की कार्यवाहियों को जिन्होंने ध्यान से देखा है, वे स्पष्ट ही यह समझ सकें होंगे कि हमारी राष्ट्रीय जागृति सिर्फ राजनीति तक सीमित नहीं है। इन सम्मेलनों में जो उत्साह पाया गया, वह एक अच्छे परिवर्तन का सूचक हैं। हम अपने राष्ट्रीय जीवन में और अपनी चर्चाओं में देसी भाषाओं को उचित स्थान देने लगे है। राजा राममोहन राय ने यह भविष्यवाणी की थी कि एक दिन हिंदुस्तान अंग्रेजी बोलनेवाला देश बन जाएगा, आज इस भविष्यवाणी के ग्रह अच्छे नजर नहीं आते। हमारे कुछ जाने–माने लोग राष्ट्रभाषा के नाते अंग्रेजी की हिमायत करने का उतावला निर्णय कर लेते है। आजकल अदालती भाषा के रूप में अंग्रेजी की जो इज्जत है, उससे जरूरत से ज्यादा प्रभावित हो जाते हैं। लेकिन वे यह देखना भूल जाते हैं कि अंग्रेजी की आज इज्जत न तो हमारे सम्मान को बढ़ानेवाली है, और न वह लोकशाही के सच्चे जोश को पैदा करने में ही सहायक होती है। कुछ सौ अमलदारों और हाकिमों की सहूलियत के लिए करोड़ों लोगों को एक परदेशी भाषा सीखना पड़ती हैं, यह बेहूदीपन की हद है। अक्सर हमारे पिछले इतिहास से उदाहरण लेकर यह साबित किया जाता है कि देश की केन्द्रीय सरकार को मजबूत बनाने के लिए एक राष्ट्रीय भाषा की जरूरत है। लोगों के लिए सर्वसामान्य माध्यम की आवश्यकता के बारे में विवाद की काई गुंजाइश नहीं। लेकिन अंग्रेजी को वह जगह नहीं दी जा सकती। हाकिमों को देशी भाषाएं अपनानी चाहिए। अंग्रेजी के हिमायतियों को अपील करनेवाली एक दूसरी बात साम्राज्य में हिंदुस्तानी का स्थान है। सादे शब्दों में इस दलील का सार यह होता है कि साम्राज्य के 12 करोड़ दूसरे लोगों के लिए हिंदुस्तान के 30 करोड़ लोग अपने सर्वसामान्य माध्यम के रूप में अंग्रेजी को अपनाएं। इस प्रश्न का अध्ययन करने वाले हर एक व्यक्ति के लिए ध्यान में रखने लायक पहली बात यह है कि 150 बरस के अंग्रेजी राज के बाद भी अंग्रेजी भाषा हिंदुस्तान की राष्ट्रभाषा का स्थान ग्रहण करने में विफल हुई है। हां, इसमें शक नहीं कि एक तरह की टूटी–फूटी अंग्रेजी हमारे शहरों में अपना कुछ स्थान बना पाई है। लेकिन इस हकीकत से तो वे लोग ही चौधियां सकते हैं, जो बम्बई–कलकत्ते जैसे शहरों में बैठकर हमारे राष्ट्रीय प्रश्नों का अध्ययन करने में लगे हैं। मगर आखिर ऐसे लोग कितने हैं? हिंदुस्तान की कुल आबादी के 2.2 प्रतिशत ही न? अंग्रेजी के हिमायती एक दूसरी बात यी भी भूल जाते हैं कि हमारी बहुत–सी देशी भाषाएं एक–दूसरे से मिलती–जुलती है, और इसलिए एक मद्रास प्रांत को छोड़कर बाकी सब प्रांतों के लिए राष्ट्रभाषा के नाते हिंदी अनुकूल है। हिंदी के इस लाभ को और हमारी हाल की राष्ट्रीय जागृति को देखते हुए हम अंग्रेजी को अपनी राष्ट्रीय जागृति को देखते हुए हम अंग्रेजी को अपनी राष्ट्रभाषा के रूप में कैसे स्वीकार कर सकते हैं ?

करोड़ों भारतीयों के दिल में पैठने का एकतात्र साधन-

मैंने एक और बात सुझाई है। मैंने और आपने बल्कि हम सभी ने उस सच्ची शिक्षा की उपेक्षा कर दी है, जो हमें राष्ट्रीय स्कूलों में प्राप्त हो सकती थी। बंगाल के नवयुवकों के लिए, गुजरात के नवयुवकों के लिए, दक्षिण भारत के नवयुवकों के लिए मध्यप्रांत और संयुक्तप्रांत तथा भारत के उस विशाल भूखण्ड में जाना–जहां सिर्फ हिंदुस्तानी ही बोली जाती है आज असम्भव–सा है। इसलिए मैं आपसे अनुरोध करता हूं कि अवकाश के समय कताई के बाद अपना जितना समय बचा सकें उस समय में हिंदुस्तानी भी सीखें। अगर आप लगन से उसे सीखें तो आप दो महीने में कताई और हिंदुस्तानी, दोनों को साध लेगें। मैं आपको यकीन दिलाता हूं कि कोई भी कुशाग्रबुद्धि और सुशील नौजवान, कोई भी देशभक्त और परिश्रमी युवक ये दोनों चीजें दो महीने में ही सीख सकता है। उसके बाद आप बेहिचक अपने गांवों में जा सकते हैं, मद्रास के अलावा भारत के किसी भी भाग में जा सकते हैं, और जनसाधारण से अपनी बात कह सकते हैं। एक क्षण के लिए भी यह न सोचें कि आप अंग्रेजी को जनसाधारण के बीच अभिव्यक्ति का सामान्य माध्यम बना सकेंगे। बाईस करोड़ भारतीय हिंदुस्तानी जानते हैं। उन्हें और कोई भाषा नहीं आती। अगर आप बाईस करोड़ भारतीयों के दिलों में पैठ जाना चाहते हैं, तो आपके लिए हिंदुस्तानी ही एकमात्र भाषा है।

अगर आप इस वर्ष, नौ महीने के इस अर्से में, सिर्फ ये दो काम ही करें, तो यकीन मानिए कि ये काम पूरा करने तक आप में एक ऐसा साहस और बल आ जाएगा जो आज आपके पास नहीं है।

पूर्ण और परिष्कृत देवनागरी ही सभी भाषाओं के लिए सक्षम-

कुछ दिन पहले एक गुजराती सज्जन ने 'नवजीवन' को एक पत्र लिखा था। उसमें मुझे सलाह दी गई थी कि मैं सारे भारत द्वारा एक ही लिपि अपनाने की आवश्यकता में अपने अविश्वास को अमली रूप देने के लिए 'नवजीवन' को देवनागरी लिपि में छापना शुरू करूं। मेरा यह दृढ़ विश्वास तो है कि सभी भारतीय भाषाओं की लिपि एक ही होनी चाहिए और ऐसी लिपि देवनागरी ही हो सकती है, फिर भी मैं पत्र–लेखक की सलाह के मुताबिक काम नहीं कर सका। इसका कारण मैं 'नवजीवन' में अपनी एक टिप्पणी में गिना चुका हूं। उन कारणों को यहां दोहराने की आवश्यकता नहीं। परन्तु इस बात में जरा भी संदेह नहीं कि इस महान राष्ट्रीय जागृति ने हमें जो मौका दिया है, उसका इस्तेमाल हमें एक लिपि अपनाने के विचार को प्रचारित करने के लिए ही नहीं बल्कि उस दिशा में कुछ ठोस कदम उठाने के लिए भी करना चाहिए। यह बिलकुल सही है कि इस तरह के एक सर्वागपूर्ण सुधार के मार्ग में हिंदूओं और मुसलमानों का साम्प्रदायिक पागलपन एक बड़ा रोड़ा बना हुआ है। परन्तु भारत में देवनागरी लिपि को सार्वभौमिक मान्यता तभी मिल सकेगी, जब पहले भारत के सभी हिंदुओं को इस मत के पक्ष में कर लिया जाए कि संस्कृत और द्रविड़ भाषा–परिवार की सभी भाषाओं की लिपि एक ही हो। अभी इस समय बंगाल में बंगला, पंजाब में गुरूमुखी, सिंध में सिंधी, उत्कल में उड़िया, गुजरात में गुजराती, आंध्रप्रदेश में तेलूगु, तमिलनाडु में तमिल, केरल में मलयालम, कर्नाटक में कन्नड़ लिपियां प्रयुक्त होती है, बिहार की कैथी और दक्षिण की सोड़ी लिपियों को यह चाहे न भी लेखें।

देवनागरी से एकता-

यदि हम सभी व्यावहारिक और राष्ट्रीय प्रयोजनों के लिए इन लिपियों के स्थान पर देवनागरी लिपि का ही प्रयोग करने लगें तो वह सचमुच एक भारी प्रगति रहेगी। उससे भारत–भर के हिंदुओं की एकता को दृढ़ करने में मद्द मिलेगी और विभिन्न प्रांतों के बीच अधिक निकट का संपर्क स्थापित किया जा सकेगा। भारत की विभिन्न भाषाओं और लिपियों की जानकारी रखनेवाले सभी लोग भली–भांति जानते हैं कि किसी भी नई लिपि को अच्छी तरह सीखने में कितनी मेहनत करनी पड़ती है। कुछ लिपियाँ तो सचमुच बड़ी सुंदर है, और फिर देश की खातिर देश–प्रेम के लिए कोई भी काम दुष्कर नहीं होता, इसलिए भिन्न लिपियों को सीखने में जो श्रम और समय लगता है, वह किसी भी तरह व्यर्थ में गंवाया गया नहीं माना जा सकता। लेकिन करोड़ों साधारण जनों से तो हम इस त्याग की भावना की उम्मीद नहीं कर सकते। राष्ट्र के नेताओं को उनके लिए चीजों को आसान बनाना पड़ेगा। इसलिए हमारी एक ऐसी लिपि होनी चाहिए, जिसे सारे भारत के सभी लोग अपनी–अपनी भाषाओं की जरूरतों के अनुसार आसानी से ढालकर अपना सकें। और सभी भाषाओं की जरूरतों के अनुसार ढाल सकने की जितनी खूबी देवनागरी लिपि में हैं उतनी और किसी लिपि में नहीं है तथा इस प्रयोजन के लिए कोई भी दूसरी लिपि उतनी पूर्ण और परिष्कृत नहीं हैं जितनी कि देवनागरी है।

एक लिपि का उद्देश्य-

परन्तु एक ही लिपि को अपनाने का उद्देश्य निस्संदेह अन्य सभी लिपियों को हटाकर उनके स्थान पर एक लिपि को प्रतिष्ठित करना है, जिससे कि विभिन्न प्रांतों के निवासी दूसरे प्रांतों की भाषाएं आसानी से सीख सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति का सबसे अच्छा उपाय यही है कि अव्वल तो देश की सभी पाठशालाओं में कम–से–कम हिंदुओं के लिए देवनागरी लिपि सीखना अनिवार्य कर दिया जाए, जैसा कि गुजरात में हैं, और दूसरे विभिन्न भारतीय भाषाओं में उपलब्ध श्रेष्ठ साहित्य देवनागरी लिपि में छापा जाए। एक हद तक ऐसा प्रयास किया भी गया है। मैंने देवनागरी लिपि में मुद्रित 'गीताजंलि' देखी है। परन्तु यह काम काफी बड़ें पैमाने पर किया जाना चाहिए और ऐसी पुस्तकों का प्रचार किया जाना चाहि। हांलाकि मैं जानता हूं कि आजकल हिंदुओं और मुसलमानों को एक–दूसरे के निकट लाने का कोई रचनात्मक सुझाव पसंद नहीं किया जाता, फिर भी मैं यहां अपनी वह बात दोहराए बिना नहीं रह सकता, जो मैं इन स्तम्भों में और अन्यत्र भी कई बार कह चुका हूं– अर्थात् यदि हिंदुओं को अपने मुसलमान भाईयों के और निकट आना है तो उनको उर्दू सीखनी चाहिए और यदि मुसलमानों को अपने हिंदू भाईयों के और निकट आना है तो उनको हिंदी सीखनी चाहिए। हिंदुओं और मुसलमानों की वास्तविक एकता में विश्वास रखनेवालों को दोनों के बीच मौजूद पारस्परिक घृणा के वर्तमान विस्फोट से निराश नहीं होना चाहिए। उनके विश्वास में यदि सचमुच कोई बल हैं, तो उनको जब भी मौका मिले, उन्हें बिना किसी दिखावे के पारस्परिक सहिष्णुता, स्नेह और सौजन्य का हर एक कार्य प्रयासपूर्वक करना चाहिए और इस दिशा में हम कम–से–कम यही कर सकते हैं कि दूसरे की भाषा सीखें।

एक-दूसरे की धर्म-पुस्तकों का पठन-

हिंदू और मुसलमान दोनों ही एक–दूसरे के धार्मिक ग्रंथों और एक–दूसरे के धर्मों के अधिष्ठापकों और उन्नायकों के बारे में घोर अज्ञानी या धर्मान्ध लोगों द्वारा लिखी गई सभी बेहूदा बातों को अपने दिमागों में भरते चले जाएं, इसके बजाय क्या यह अच्छा नहीं रहेगा कि हिंदू कुरान शरीफ और पैगम्बर के बारे में मुसलमानों के विचार जानने के लिए आला काबलियत के उनके धर्म–प्रवण मुसलमानों द्वारा लिखी गई उर्दू पुस्तकों का अध्ययन करें, और मुसलमान गीता और कृष्ण के बारे में हिदुओं की भावनाओं को समझने के लिए धर्म–प्रवण हिंदुओं द्वारा लिखी गई उतनी ही अच्छी हिंदी पुस्तकों का अध्ययन करें।

उत्तीर्ण विद्यार्थी देश-सेवा के लिए हिंदी का प्रयोग करें-

मैसूर के हिंदी भाषा सेवा समाज में 20 जुलाई, 1927 को उर्त्तीण हुए विद्यार्थियों को प्रमाण–पत्र वितरित करने के बाद गाँधीजी ने अपना नीचे दिया भाषण हिंदी में किया, जिसका कन्नड़ में रूपान्तर देशभक्त गंगाधरराव ने प्रस्तुत किया। अध्यक्ष श्री एम. वेंकट कृष्णैया हैं। आप सब लोग उन्हें मैसूर के वयोवृद्ध पथ–प्रदर्शक कहते हैं। वयोवृद्ध पथ–प्रदर्शक शब्द भी मुझे बड़ा प्रिय लगता है, लकिन मैं चाहूंगा कि आप श्री वेंकट कृष्णैया को मैसूर के वृद्ध पितामह कहें, जैसा कि श्री गंगाधरराव ने कहा है। या आप चाहें तो इसके लिए हिंदी, संस्कृत या कन्नड़ से कोई दूसरा बेहतर नाम चुन लें। आप लोगों ने मुझे जो मानपत्र दिया है, उसके पीछे एक संदेश है। वह संदेश यह है कि हिंदी भारत की सर्वमान्य भाषा बननी चाहिए, और भारत में रहनेवाले लोगों को, वे किसी भी सम्प्रदाय के क्यों न हों, एक राष्ट्र के रूप में एकताबद्ध होनी चाहिए। आज हमारे पास कोई ऐसी भाषा नहीं हैं, जो सभी देशवासियों की भाषा हो। हमारे दिल भी एक नहीं हैं। ब्राम्हणों और गैर–ब्राम्हणों, हिंदुओं और मुसलमानों के बीच फूट हैं, और खुद हिंदू–समाज के अंदर भी अछूत लोग हैं, जिनको इस तरह बिलकुल अलग रखा गया है, जैसे वे हिंदु–समाज का हिस्सा ही न हों। हमारे दिल एक दूसरे के करीब आने के बजाय एक दूसरे से अलग दूर जा पडें हैं। देश–भर के लिए एक सर्वसामान्य भाषा बनाने का उद्देश्य सभी देशवासियों को एक करना है। और जब सब लोग सर्वमान्य भाषा के एक ही सूत्र में बंध जाएंगें, तब सभी लोग वयोवृद्ध पथ–प्रदर्शक का अर्थ समझने लगेंगे। थोड़ी देर के लिए मान लीजिए कि आप पाण्डवों के काल में रह रहे हैं और वृद्ध भीष्म पितामह आपके पास आए हैं। अब अगर आप कहें कि वयोवृद्ध पथ–प्रदर्शक आए हैं तो वह कितना हास्यास्पद लगेगा। भीष्म और उनकी प्रतिज्ञाएं आपको हमेशा याद रखनी चाहिए। आप जब भी भीष्म का ध्यान करे, हर दिल हिम्मत और बहादुरी से भर जाएगा, और हर एक को भीष्म की प्रतिज्ञाएं जरूर याद आ जाएंगी और मन में जागृति पैदा होगी। आप यदि हर रोज सुबह भीष्म का ध्यान करें, अपने–आपको उनके जैसा सोचने लगें, तो मैं कहता हूं कि आपके अंदर हिम्मत और बहादुरी पैदा हो जाएगी। राष्ट्र के कायाकल्प के लिए ये चीजें बहुत ही जरूरी हैं।

केरल का हिंदी प्रस्ताव-

यह परिषद् गांधीजी और सेठ जमनालाल बजाज के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करती हैं, क्योंकि ये दोनों महानुभाव दक्षिण भारत में हिंदी–प्रचार–आंदोलन को बढ़ाने और हिंदी को भारत की राष्ट्रभाषा बनाने के लिए अथक परिश्रम कर रहे हैं। परिषद् भारत के तमाम देशभक्त पुत्रों और पुत्रियों से आग्रह करती है कि वे स्वयं हिंदी भाषा सीखें और केन्द्रीय कोष में चंदा दें और इस प्रकार इस आंदोलन की सहायता करें। इस प्रस्ताव को श्री ए.शंकर पुडवाल बी.ए., बी.एल. ने प्रस्तुत किया था। श्री उच. करूणाकर नैयर ने इसका अनुमोदन और श्री एच.डी.कामत ने समर्थन किया था। इस प्रस्ताव को प्रकाशित करके मैं अपना, सेठ जमनालालजी का या प्रस्ताव से संबंधित लोगों का विज्ञापन नहीं कर रहा हूं। दक्षिण में हिंदी–प्रचार के बारे में मुझे कितनी दिलचस्पी है, यह हर कोई जानता है। जब मैं 1915 में भारत लौटा, उसके पहले से ही सेठ जमनालालजी हिंदी के पक्के प्रेमी बन चुके थे। दक्षिण भारत की उनकी यात्रा ने वहां के हिंदी–प्रचार के कार्य को नया प्रोत्साहन दिया है। प्रस्ताव को पेश करनवालों को उनके कार्य का पुरस्कार उसी समय मिले गया, जब वे अपने परिचित श्रोताओं के सामने प्रस्ताव को पेश करने, उसका अनुमोदान और समर्थन करने खड़े हुए थे। प्रस्ताव के साथ ही उनके नाम छापने का आशय केवल सार्वजनिक रूप से यह आशा व्यक्त करना है कि जिन सज्जनों का प्रस्ताव से संबंध हैं, वे खुद प्रस्ताव की दो मुख्य बातों का पालन करते हैं, यानी वे स्वयं हिंदी सीख रहे हैं और धन से केंद्रीय कोष की सहायता भी कर रहे हैं। मैं इस घटना को लेकर एक मोटी बात की छाप लोगों के दिल पर डाल देना चाहता हूं। जहां तक इन सज्जनों का संबंध है, यह बहुत संभव है कि ये हिंदी के ज्ञाता हैं और केंद्रीय कोष में बराबर चंदा देते रहते हैं। लेकिन इस बात से अभी हम इंकार नहीं कर सकते कि आज भी हममें ऐसे प्रस्ताव पेश करने, उनका समर्थन करने और उन्हें पास करने की आदत बनी हुई हैं, जिन्हें म खुद कभी अमल में लाने की इच्छा नहीं रखते। अगर हम उन प्रस्तावों का समर्थन न करें,

उनके अनुकूल मत न दें, जिन्हें अमल में लाने की न तो हमारी इच्छा है और न योग्यता ही, तो मैं समझता हूं इससे हम राष्ट्र की प्रगति में सहायक होंगे और अपना बहुत कुछ समय और कष्ट बचा सकेंगे। मुझे मालूम है कि जहां–जहां से जमनालालजी और श्री राजगोपालाचार्य गए हैं, वहां की सभाओं में ऐसे प्रस्ताव पास किए गए हैं। अगर उन–उन स्थानों के सब सज्जन इन प्रस्तावों पर उसी ढंग से अमल भी करने लगें तो हिंदी–प्रचार का काम दिन–दूना–रात–चौगुना बढ़ने लगे और उसे धन की भी कमी न रहे।

यदि हम हिंदी को राष्ट्रभाषा बनवाना चाहते हैं, यदि हिंदू–मुसलमान दोनों में एका सिद्ध करना चाहते हैं तो हम संस्कृत या अरबी–फारसी शब्दों का इरादतन बहिष्कार नहीं कर सकते। अर्थात् भाषा लिखने या बोलते समय हमारे मन में एक–दूसरे का या सक–दूसरे की बोली का द्वेष नहीं होना चाहिए, बल्कि एक–दूसरे के लिए प्रेम अथवा मुहब्बत होनी चाहिए।

राष्ट्रभाषा बनें या न बनें हिंदी को मैं छोड़ नहीं सकता-

इंदौर के हिंदी साहित्य सम्मेलन के आठवें अधिवेशन के बाद गाँधीजी ने दक्षिण भारत में राष्ट्रभाषा–प्रचार का काम प्रारंभ किया। ता. 20.04.1935 को इंदौर में सम्मेलन का 24 वां अधिवेशन हुआ, और गाँधीजी दूसरी बार उसके सभापति बने। अध्यक्ष पद से उन्होंने अपने भाषण से आगे की रूपरेखा पेश की। 1918की तरह 1935 में राष्ट्रभाषा–प्रचार के काम का एक नया अध्याय शुरू हुआ। सभापति–पद से दिया गया गाँधीजी का वह भाषण इस प्रकार है–

ईश्वर की गति गहन है। अक्टूबर मास में मैं इस बोझ को टाल रहा था। यह पद पूजनीय मालवीयजी महाराज का था। पर उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाने के कारण और चूंकि उनकी विदेश जाना था इसलिए उन्होंने त्याग–पत्र भेजा। दूसरा सभापति चुनने में आपको कुछ मुसीबत थी। मेरा नाम तो स्वागत–समिति के सामने था ही। मुझको जब स्वागत–समिति का संकट बताया गया, तो मैं विवश हो गया और पद ग्रहण करना मैंने स्वीकार कर लिया। स्वीकृत देने का मेरे लिए अन्य कारण तो था ही। गत वर्ष मेरे पास इस अधिवेशन के सभापतित्व का प्रस्ताव आया, तब मैंने दक्षिण भारत में हिंदी–प्रचार के लिए दो लाख रूपए मांगें। भला आजकल दो लाख रूपये इस काम के लिए कौन दें? हां हम प्रयत्न करेंगे। आपके पद स्वीकार करने से सफल होंगे। समिति की ऐसी बातों में फंस जांऊ, ऐसा भोला मैं कब था? मैंने तो दो लाख की गारण्टी मांगी। मैंने समझा कि इस पर मित्रों ने मुझे छोड़ दिया। लेकिन ईश्वर को दूसरी ही बात करनी थी। उसे मेरे मार्फत हिंदी–प्रचार की कुछ और सेवा लेनी थी। मालवीयजी महाराज न आ सके। उनको ईश्वर शतायु करें। मैंने आपक अधिवेशनों की रिर्पोट कुछ अंशों में देखी है। सबसे पहला अधिवेशन सन् 1910 में हुआ था। उसके सभापति मालवीयजी महाराज ही थे। उनसे बढ़कर हिंदी–प्रेमी भारतवर्ष में हमें कहीं नहीं मिलेंगे। कैसा अच्छा होता यदि वह आज भी इस पद पर होते। उनका हिंदी–प्रचार क्षेत्र भारतव्यापी है, उनका हिंदी का ज्ञान उत्कृष्ट है। मेरा क्षेत्र बहुत मर्यादित है। मेरा हिंदी भाषा का ज्ञान नहीं के बराबर है। आपकी प्रथमा परीक्षा में मैं उर्त्तीण नहीं हो सकता हूं। लेकिन हिंदी भाषा को मेरा प्रेम किसी से कम नहीं ठहर सकता। मेरा क्षेत्र दक्षिण में हिंदी–प्रचार है। सन् 1918 में जब आपका अधिवेशन यहां हुआ था, तब से दक्षिण में हिंदी प्रचार के कार्य का आरम्भ हुआ है। वह कार्य तब से उत्तरोतर बढ़ ही रहा है। धनाभाव के कारण वह रूकना नहीं चाहिए। पं. हरिहर शर्मा धन के लिए मुझे नित्य सताते हैं। उनसे मैं कहता हूं कि –अब मुझे मत सताइए। दक्षिण से ही आपको पैसे मिलने चाहिए। इतना भी करने की शक्ति यदि आपमें नहीं हैं, तो आप अपना प्रयत्न निष्फल समझिए। कहने को तो मैं यह कह देता हूं, पर इतनी बड़ी संस्था को 21 वर्ष तक नाबालिग रहने का भी तो हक होना चाहिए। इसलिए जब मौका ाया तब मैंने दो लाख की मांग की। इतना द्रव्य अधिक भी नहीं है। लेकिन जो सज्जन मेरे पास आए, उन्होंने रूई के दाम एकदम गिर जाने से दो लाख के लिए अपनी असमर्थता प्रकट की। बात भी ठीक थी। जमनालालजी ने भी उन भाइयों का पक्ष लिया। मैंने भी हार मान ली और एक लाख की शर्त कबूल कर ली। अब किसी न किसी तरह से पर सचाई के साथ आपको मुझे एक लाख देना है। आप पूछ सकते हैं कि केवल दक्षिण में ही हिंदी–प्रचार के लिए क्यों? मेरा उत्तर यह है कि दक्षिण भारत कोई छोटा मुल्क नहीं है। वह तो एक महाद्वीप–सा है। वहां चार प्रांत और चार भाषाएं हैं–तमिल, तेलुगू, मलयाली, कन्नड़। आबादी करीब सवा सात करोड़ है। इतने लोगों में यदि हम हिंदी–प्रचार की नींव मजबूत कर सकें तो अन्य प्रांतों में बहुत सुभीता हो जाएगा। यद्यपि मैं इन भाषाओं को संस्कृत की पुत्रियां मानता हूं, तो भी ये हिंदी, उड़िया, बंगला, आसामी, पंजाबी, सिंधि, मराठी, गुजराती से भिन्न है। इनका व्याकरण हिदी से बिलकुल भिन्न है। इनको संस्कृत की पुत्रियां कहने से मेरा अभिप्राय इतना ही है कि इन सबमें संस्कृत शब्द काफी हैं और जब संकट आ पड़ता है, तब ये संस्कृत माता को पुकारती हैं और नए शब्दों के रूप में उसका दूध पीती है। प्राचीनकाल में भले ये स्वतंत्र भाषाएँ रही हों, पर अब तो ये संस्कृत से शब्द लेकर अपना गौरव बढ़ा रही है। इसके अतिरिक्त और भी तो कई कारण इनको संस्कृत की पुत्रियां कहने के हैं, पर उन्हें इस समय जाने दीजिए।

हिंदी, हिंदुस्तानी और उर्दू-तीनों का अर्थ एक ही भाषा-

मेरे सामने कई उर्दू अखबारों की कतरने पड़ी हैं, जिनमें हाल में बनी हुई अखिल भारतीय साहित्य–परिषद की कार्यवाही की और साथ ही बाबू राजेन्द्रप्रसाद, बाबू पुरूषोतमदास टण्डन पं. जवाहरलाल नेहरू की और मेरी बहुत सख्त और कड़ी आलोचना की गई है। हम पर यह इल्जाम लगाया गया है कि इसमें हमारा कुछ छिपा हुआ मतलब है, जिसका जहां तक मुझे मालूम है हमें पता तक नहीं। लिखनेवालों ने यह समझने की तकलीफ गवारा नहीं की कि हमने परिषद् में क्या कहा और क्या किया था? उनका यह ख्याल है कि परिषद् की अंदरूनी मंशा यह है कि उर्दू को हटाकर उसकी गद्दी हिंदी को दें दी जाए और उसे संस्कृत के शब्दों में इस कदर लाद दिया जाए कि मुसलमानों के लिए उसका समझना करीब–बरीब असम्भव हो जाए। बाबू पुरूषोतमदास टण्डन ने इलाहाबाद में हिंदी साहित्य सम्मेलन का संग्रहालय खोले जाने के मौके पर जो तकरीर की थी, उससे ये लोग यह नतीजा निकालते हैं कि उनके इस दावे में कि 23 करोड़ हिंदुस्तानी हिंदी बोलते हैं या कम–से–कम समझ तो लेते ही हैं, सच्चाई का गला घोंट दिया गया है। इन लेखों में इतना ही नहीं कहा गया, कुछ और भी ताने दिए गए हैं कि अगर हो सकें तो उन गलतफहमियों को दूर कर दूं, जिनकी वजह से हम लोगों पर ये कटाक्ष किए गए हैं।

हिंदी नाम पर आपत्ति क्यों ?

पहले आखिरी बात ले लूं। इन लेखकों के पास टण्डनजी की पूरी तकरीर होती तो इन्हें यह पता चल जाता कि इन 23 करोड़ हिंदुस्तानियों में उन्होंने जान–बूझकर उर्दू बोलनेवाले हिंदू और मुसलमानों को शामिल किया था। इसी से उन्होंने हिंदी शब्द के प्रयोग में उर्दू को शामिल कर लिया था। सन् 1935 में इंदौर के साहित्य–सम्मेलन में जो प्रस्ताव पास हुआ था, उसके मुताबिक हिंदी का मतलब उस जुबान से था, जिसे उत्तर हिंदुस्तान में हिंदु और मुसलमान दोनों ही बोलते हैं और जो देवनागरी या फारसी लिपि में लिखी जाती है। अगर लेखकों को यह व्याख्या मालूम होती, तो उन्हें किसी तरह की शिकायत न होती–हां, अगर हिंदी लफ्ज पर ही उन्हें शिकायत हो तो बात दूसरी है। अगर उन्हें हिंदी नाम से ही चिढ़ हो तो यह दुःख की बात है। उत्तर हिंदुस्तान में बोली जानेवाली भाषा के लिए 'हिंदी' ही मूल शब्द है। उर्दू नाम तो–जैसा कि सब अच्छी तरह जानते हैं–खासतौर से और खास मतलब से रखा गया था। अरबी लिपि भी मुसलमान शासकों के सुभीते के लिए रखी गई थी। इतिहास का अगर यही क्रम है, तो जब तक हिदी शब्द दोनों जुबानों के लिए काम में आता है, उसका प्रयोग करने में कोई मुखालिफत नहीं होनी चाहिए। खैर, जो कुछ भी हो, ज्यादा–से–ज्यादा जो मतभेद है, वह यहां रह जाता है कि एक ही चीज के लिए दो शब्दों में से कौन–सा शब्द काम में लाया जाए। हिंदी को संस्कृत शब्दों से लाद देने में कुछ सच्चाई तो है। हिंदी के कुछ लेखक अपने लेखों में बेमतलब संस्कृत शब्द ठूंसने का हठ करते हैं। पर इस तरह की शिकायत उन उर्दू लेखकों के खिलाफ भी की जा सकती है, जो फारसी या अरबी लफ्जों के इस्तेमाल पर व्यर्थ जोर देते हैं। इससे भी बुरा यह है कि भाषा का व्याकरण बदल देते हैं। ये दोनों तरह की ज्यादतियां कुछ ही समय में गायब हो जाएंगी, क्योंकि साधारण जनता ऐसी भाषा को कभी अपना नहीं सकती, जिस जुबान को आम जनता नहीं समझ सकती, उसकी उम्र लंबी नहीं हो सकती। रही भारतीय परिषद् सो उसकी मंशा तो भिन्न–भिन्न प्रांतों के अच्छे–अच्छे विचारों को पुख्ता हिंदी भाषा के द्वारा सारे भारत के लिए सुलभ बनाना है। इसमें, जैसा कि लेखों में ताना दिया गया है, हमारी कोई छिपी मंशा या साम्प्रदायिक बात नहीं है। हिंदी–हिंदुस्तानी शब्द तो मेरे कहने से अपराया गया था। यह शब्द तो हिंदी की परिभाषा एक संयुक्त शब्द के द्वारा बतलाने के लिए रखा गया था। मौलवी अब्दुल हक साहब ने हिंदी–हिंदुस्तानी की जगह सिर्फ हिंदुस्तानी या हिंदी–उर्दू के प्रयोग का प्रस्ताव रखा था। मुझे तो इन दोनों में कोई एतराज नहीं हैं, लेकिन भारतीय साहित्य–परिषद् अपने जन्म को भूल नहीं सकती थी। परिषद् का विचार तो इंदौर के साहित्य सम्मेलन में उठा था और नागपुर में सम्मेलन की संरक्षकता ही में उसने एक निश्चित रूप धारण किया। इसलिए हिंदी शब्द का रखना जरूरी हो गया। इसकी जगह उर्दू शब्द के रखने में जो बुराई होती, उसकी वजह तो मैं बतला ही चुका हूं। लेकिन मैं यह दिखलाने की कोशिश कर चुका हूं कि 'हिंदी हिंदुस्तानी' और 'उर्दू' एक ही अर्थ प्रकट करने वाले मुख्तलिफ शब्द है और उनसे एक ही भाषा या जुबान का मतलब निकलता है।

राष्ट्रभाषा की जगह हिंदी ही ले सकती है दूसरी जुबान नहीं-

मैंने अपने मन में कहा, गुजराती मेरी मातृभाषा है, पर वह राष्ट्रभाषा नहीं हो सकती। देश की 30वें हिस्से से अधिक जनसंख्या गुजराती भाषा–भाषी नहीं हैं। उसमें मुझे तुलसीदास की रामायण कहां मिलेगी? तो क्या मराठी राष्ट्रभाषा हो सकती है? मराठी भाषा से मुझे प्रेम है। मराठी बोलने वाले लोगों में मेरे साथ काम करने वाले कुछ बड़ें पक्के और सच्चे साथी है। महाराष्ट्रियों की योग्यता, आत्म–बलिदान की उनकी शक्ति और उनकी विद्वता का मैं कायल हूं। तो भी जिस मराठी भाषा का लोकमान्य तिलक ने गज़ब का उपयोग किया, उसे

राष्ट्रभाषा बनाने की कल्पना मेरे मन में नहीं उठी। जिस वक्त मैं इस प्रश्न पर अपने दिल में दलीलें कर रहा था– मैं आपको बता दूं कि उस वक्त मुझे हिंदी भाषा–भाषियों की ठीक–ठीक संख्या भी मालूम नही थी–उस वक्त भी मुझे खुद–ब–खुद यह लगा था कि राष्ट्रभाषा की जगह एक हिंदी ही ले सकती हैं, दूसरी कोई जुबान नहीं। क्या मैंने बंगला की प्रशंसा नहीं की? मैंने की है, और चैतन्य, राममोहन राय, रामकृष्ण, विवेकानन्द और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की मातृभाषा होने के कारण मैंने उसे सम्मान की दृष्टि से देखा है, फिर भी मुझे लगा कि बंगला को हम अंतरप्रांतीय आदान–प्रदान की भाषा नहीं बना सकते। तो क्या दक्षिण भारत की कोई भाषा बन सकती है? यह बात नहीं कि मैं इन भाषाओं से बिलकुल ही अनभिज्ञ था... पर तमिल या दूसरी कोई दक्षिण भारतीय भाषा राष्ट्रभाषा कैसे हो सकती है? तब हिंदी जुबान, बाद में जिसे हम हिंदुस्तानी या उर्दू भी कहने लगे हैं और जो देवनागरी और उर्दू लिपि में ही लिखी जाती है, इसका माध्यम हो सकती है और है।

नेहरूजी के भाषायी सुझाव-

(पं. जवाहरलाल नेहरू ने इस विषय पर अंग्रेजी में एक पुस्तिका लिखी है। इसमें उन्होंने जो बातें सुझाई हैं, उन्हें पाठकों की जानकारी के लिए मैं नीचे देता हूं–मोहनदास करमचंद गांधी)

1. सरकारी काम और सार्वजनिक शिक्षा के लिए विभिन्न प्रांतों में उन भाषाओं का प्रयोग होना चाहिए, जो वहां की प्रमुख भाषाएं हों। इसके लिए इन भाषाओं की सरकारी तौर पर स्वीकृत किया जाना चाहिए–हिंदुस्तानी (जिसमें हिंदी और उर्दू दोनों ही शामिल है), बंगला, गुजराती, मराठी, तमिल, तेलुगू, कन्नड़, उड़िया, आसामी, सिंधि और किसी हद तक पश्तों तथा पंजाबी थी।

2. हिंदुस्तानी भाषा–भाषी प्रांतों में हिंदी और उर्दू दोनों ही अपनी–अपनी लिपि के साथ सरकार द्वारा स्वीकृत की जानी चाहिए। सरकारी सूचनाएं दोनों ही लिपियों में प्रकाशित होनी चाहिए। अदालतों या अन्य सरकारी दफ्तरों में अर्जी पेश करने वाला व्यक्ति किसी भी लिपि हिंदी या उर्दू का प्रयोग कर सकता है, उससे दूसरी लिपि में उस दरख्वास्त की नकल न मांगी जाए।

3. हिंदुस्तानी प्रांतों की भाषा सार्वजनिक शिक्षा के माध्यम के लिए हिंदुस्तानी होगी, इसलिए दोनों लिपियों का प्रयोग होगा। लिपि का चुनाव खुद विद्यार्थी या उसके संरक्षक द्वारा होगा। विद्यार्थी को दोनों लिपियां सीखने के लिए मजबूर न किया जाए। लेकिन माध्यमिक शिक्षा में उसे इसके लिए प्रोत्साहन दिया जा सकता है।

4. राष्ट्रभाषा हिंदुस्तानी हो और देवनागरी व फारसी दोनों लिपियों को स्वीकार किया जाए। इसलिए हिंदुस्तान–भर की किसी भी अदालत या सरकारी दफ्तरों में अर्जियां हिंदुस्तानी में (दोनों लिपियों में से चाहें जिस लिपि में) पेश की जा सकेंगी, और किसी दूसरी भाषा या लिपि में उनकी नकल या अनुवाद देने की कोई जरूरत न होगी।

5. देवनागरी, बंगला, गुजराती और मराठी लिपियों में एकरूपता लाने और उनके मेल से एक ऐसी संयुक्त लिपि बनाने का प्रयत्न किया जाए, जो छापाखानों, टाइप–राइटरों और दूसरी तरह के यंत्रों के लिए उपयुक्त सिद्ध हो।

6. सिंधी लिपि को उर्दू लिपि में मिला दिया जाए, और उसे जहां तक संभव हो सके, सरल और छापाखानों, टाइप–राइटरों और दूसरी तरह के यंत्रों में काम आने लायक बनाया जाए।

7. दक्षिण भारतीय भाषाओं की लिपियों को देवनागरी लिपि के समान बनाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए। अगर यह काम संभव न जान पड़े, तो दक्षिण भारत की विभिन्न भाषाओं (तमिल, तेलुगू, कन्नड़ और मलयालम) के लिए एक लिपि बनाने की कोशिश की जाए।

8. रोमन लिपि में अनेक लाभ होते हुए भी, कम–से–कम फिलहाल तो, अपनी देसी भाषाओं के लिए उसका प्रयोग हमारे लिए संभव नहीं है। इन लिपियां की व्यवस्था इस तरह होनी चाहिए–देवनागरी बंगला, गुजराती और मराठी के योग से बनी एक लिपि, उर्दू और सिंधी के लिए एक लिपि, और अगर दक्षिण भारतीय भाषाओं की विभिन्न लिपियों को देवनागरी के समीप नहीं लाया जा सकता हो, तो सब दक्षिणी भाषाओं के लिए एक लिपि।

9. जिन प्रांतों में हिंदुस्तानी बोली जाती हैं, वहां अगर हिंदी और उर्दू में भेद बढ़ता भी जा रहा है और अगर उनका विकास भी जुदा–जुदा दिशाओं में हो रहा है, तो भी किसी प्रकार की आशंका की कोई वजह नहीं है। उनके विकास में किसी प्रकार की बाधाएं भी उपस्थित न की जानी चाहिए। जब भाषा में नए और गूढ़ विचारों का समावेश हो रहा है तो किसी हद तक यह स्वाभाविक ही है। दोनों भाषाओं के विकास से हिदुस्तानी भाषा की उन्नति ही होगी। बाद में जब संसार की अन्य शक्तियों का प्रभाव बढ़ेगा या राष्ट्रीयता का उस

दिशा में दबाव पड़ेगा, तो दोनों भाषाओं का सामंजस्य अनिवार्य हो जाएगा। सार्वजनिक शिक्षा बढ़े के साथ भाषा में समानता और सामंजस्य का प्रादुर्भाव होगा।

10. हमें इस बात पर जोर देना चाहिए कि हमारी भाषाएं साधारण जनता की भाषाएं बनें। लेखकों को चाहिए कि वे जनता की समस्याओं पर लिखें और जो कुछ वे लिखें वह सरल भाषा में हों, ताकि जनता की समझ में आ सके। दरबारी और कृत्रिम शैली तथा लच्छेदार भाषा के प्रयोग को प्रोत्साहन नहीं मिलना चाहिए और सरल तथा ओजपूर्ण शैली के विकास से दूसरे फायदों के अलावा एक फायदा यह भी होगा कि हिंदी और उर्दू में समानता बढ़ जाएगी।

11. जैसे अंग्रेजी के प्रारभिक और मुख्य शब्दों को चुनकर 'बेसिक इंग्लिश' (आधार भाषा) तैयार की गई है, वैसे ही हिंदुस्तानी के लिए भी एक आधार–भाषा तैयार की जानी चाहिए। यह भाषा सरल होनी चाहिए, जिसमें व्याकरण के बंधन कम–से–कम हों और लगभग 1000 शब्द हों। वह संपूर्ण भाषा हो, जो साधारण बोलचाल और लिखने के कामों के लिए पर्याप्त हों, साथ ही वह हिंदुस्तानी के ही अंतर्गत हो, और हिंदुस्तानी के अध्ययन के लिए प्रारंभिक भाषा के रूप में रहें।

12. इस आधार–भाषा को तैयार करने के अलावा हिंदुस्तानी (हिंदी और उर्दू) में, और अगर सम्भव हो तो दूसरी भाषाओं में भी, वैज्ञानिक, राजनीतिक और अर्थशास्त्र या दसरे विषयों के संबंध में प्रयुक्त होनेवाले विशेष शब्दों को निश्चित कर लेना चाहिए। जहां आवश्यक समझा जाए, ऐसे शब्दों को विदेशी भाषाओं स`ले लिया, और उन्हें तत्सम के लिए देसी भाषाओं से ही लेकर–शब्द–सूची तैयार कर लेनी चाहिए, ताकि वैसे शब्दों के लिए एक निश्चित और समान शब्दकोश का निर्माण किया जा सके।

13. सार्वजनिक शिक्षा के विषय में सरकार की नीति यह हो कि विद्यार्थी की मातृभाषा ही शिक्षा का माध्यम होगी। प्रत्येक प्रांत में प्रारम्भिक शिक्षा से उच्च शिक्षा तक शिक्षा का माध्यम प्रांत की भाषा को ही रखा जाए। अगर किसी प्रांत में दूसरी भाषावाले विद्यर्थियों को बहुत बड़ा वर्ग हो तो उन्ही की मातृभाषा में प्रारम्भिक शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जाए, बशर्ते कि उनकी शिक्षा का प्रबंध सुविधापूर्वक किसी शिक्षा केंद्र से हो सके। अगर दूसरी मातृभाषा वाले विद्यार्थियों का वर्ग काफी बड़ा हो तो माध्यमिक शिक्षा भी उन्हें अपनी मातृभाषा में मिल सकें। जिस प्रांत में वे रहते हैं, उस प्रांत की भाषा का अध्ययन एक पाठ्य–विषय के रूप में अनिवार्य किया जा सकता है।

14. जिन प्रांतों में बोलचाल की भाषा हिंदुस्तानी न हों, वहां माध्यमिक शिक्षा में हिंदुस्तानी की शिक्षा आधार–भाषा की तरह दी जानी चाहिए। लिपि का चुनाव विद्यार्थियों के ऊपर ही छोड़ा जा सकता है।

15. उच्च शिक्षा में माध्यम प्रांत की भाषा को ही रखना चाहिए। लेकिन साथ ही, हिंदुस्तानी का (लिपि कोई भी हो) और एक विदेशी भाषा का अध्ययन अनिवार्य हो। कला–कौशल की उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में इन भाषाओं के अनिवार्य अध्ययन की आवश्यकता नहीं हैं, हालांकि इनका ज्ञान हो तो अच्छा ही है।

16. विदेशी भाषाओं और प्राचीन भारतीय भाषाओं के अध्ययन का प्रबंध माध्यमिक शिक्षा के साथ–साथ हो, लेकिन कुछ विशेष पाठ्यक्रमों को छोड़कर उनकी शिक्षा अनिवार्य न हों।

17. प्राचीन साहित्य और आधुनिक विदेशी भाषाओं की साहित्यिक पुस्तकों का भारतीय भाषाओं में अनुवार कराया जाए, ताकि हमारी देसी भाषाओं का अन्य देशों के सांस्कृतिक और सामाजिक आंदोलन से संपर्क स्थापित हो सके, और उससे हमारी देशी भाषाओं को शक्ति मिलें।

अंग्रेजी की गुलामी से बच्चों पर कितना जुल्म-

मैंने सर राधाकृष्णन् से पहले ही यह कह दिया था कि मुझे क्यों बुलाते हैं? मैं यहां पहुंचकर क्या कहूंगा? जब बड़े–बड़े विद्वान मेरे सामने आ जाते हैं तो मैं हार जाता हूं। जब से हिंदुस्तान आया हूं, मेरा सारा समय कांग्रेस में और गरीबों, किसानों और मजदूरों वगैरह में बीता हैं। मैंने उन्ही का काम किया है। उनके बीच मेरी जुबान अपने–आप खुल जाती है। मगर विद्वानों के सामने कुछ कहते हुए मुझे बड़ी झिझक मालूम होती है। सर राधाकृष्णन ने मुझे लिखा कि मैं अपना लिखा हुआ भाषण उन्हें भेज दूं। पर मेरे पास उतना समय कहां था? मैंने उन्हें जवाब दिया कि वक्त पर मुझे जैसी प्रेरणा मिल जाएगी, उसी के अनुसार मैं कुछ कह दूंगा। मुझे प्रेरणा मिल गई। मैं जो कुछ कहूंगा मुमकिन हैं, वह आपको अच्छा न लगे। उसके लिए आप मुझे माफ कीजिएगा। यहां आकर जो कुछ मैंने देखा,

और देखकर मेरे मन में जो चीज पैदा हुई, वह शायद आपको चुभेगी। मेरा ख्याल था कि कम–से–कम यहां तो सारी कार्यवाही अंग्रेजी में नहीं, बल्कि राष्ट्रभाषा में ही होगी। मैं यहां बैठा यही इंतजार कर रहा था कि कोई न कोई तो आखिर हिंदी या उर्दू में कुछ कहेगा। हिंदी–उर्दू न सही, कम–से–कम मराठी या संस्कृत में ही कोई कुछ कहता। लेकिन मेरी सब आशाएँ निष्फल हुई।

अंग्रेजी के गुलाम-

अंग्रेजी को हम गालियां देते हैं कि उन्होंने हिंदुस्तान को गुलाम बना रखा है, लेकिन अंग्रेजी के तो हम खुद ही गुलाम बन गए हैं। अंग्रेजी ने हिंदुस्तान को काफी पामाल किया है। इसके लिए मैंने उन पर कड़ी से कड़ी टीका भी की है। परन्तु अंग्रेजी की अपनी इस गुलामी के लिए मैं उन्हें जिम्मेदार नहीं समझता। खुद अंग्रेजी सीखने और अपने बच्चों को अंग्रेजी सिखाने के लिए हम कितनी–कितनी मेहनत करते हैं। अगर कोई हमें यह कहता है कि हम अंग्रेजी की तरह अंग्रेजी बोल लेते हैं, तो हम मारे खुशी के फूले नहीं समाते। इससे बढ़कर दयनीय गुलामी और क्या हो सकती है? इसकी वजह से हमारे बच्चों पर कितना जूल्म होता है। अंग्रेजी के प्रति हमारे इस मोह के कारण देश की कितनी शक्ति और कितना श्रम बर्बाद होता है? इसका पूरा हिसाब तो हमें तभी मिल सकता है, जब गणित का कोई विद्वान इसमें दिलचस्पी लें। कोई दूसरी जगह होती तो शायद यह सब बर्दाश्त कर लिया जाता, मगर यह तो हिंदु विश्वविद्यालय है। जो बातें इसकी तारीफ में अभी कहीं गई हैं, उनमें महज ही एक आशा यह भी प्रकट की गई है कि यहां के अध्यापक और विद्यार्थी इस देश की प्राचीन–संस्कृति और सभ्यता के जीते–जागते नमूने होंगे। मालवीयजी ने तो मुंहमांगी तनख्वाहें देकर अच्छे–से–अच्छे अध्यापक यहां आप लोगों के लिए जुटा रखे हैं। अब उनका दोष तो कोई कैसे निकाल सकता है? दोष ज़माने का है। आज हवा ही कुछ ऐसी बन गई है कि हमारे लिए उसके असर से बच निकलना मुश्किल हो गया है। लेकिन अब वह ज़माना भी नहीं रहा, जब विद्यार्थी को जो कुछ मिलता था, उसी में संतुष्ट रह लिया करते थे। तब तो वे बड़े–बड़े तूफान भी खड़ें कर लिया करते थे। छोटी–छोटी बातों के लिए भूख–हड़ताल तक कर देते हैं। अगर ईश्वर उन्हें बुद्धि दे तो वे कह सकते हैं–हमें अपनी मातृभाषा में पढ़ाओ। मुझे यह जानकर खुशी हुई कि यहां आन्ध्र के 250 विद्यार्थी हैं। क्यों न वे सर राधाकृष्णन के पास जाएं और उनसे कहें कि यहां हमारे लिए एक आंध्र–विभाग खोल दीजिए और तेलुगू में हमारी सारी पढ़ाई का प्रबंध कर दीजिए? और अगर वे मेरी अकल से काम लें, तब तो उन्हें कहना चाहिए कि हम हिंदुस्तानी हैं, चुनांचें हमें ऐसी जुबान में पढ़ाइए जो सारे हिंदुस्तानी में समझी जा सके और ऐसी जुबान तो हिंदुस्तानी ही हो सकती है।

झगड़ा हिंदी-उर्दू का नहीं बल्कि इन दोनों का अंग्रेजी से हैं-

नीचे लिखा खत एक भाई ने पिछली 29 जनवरी को लिखकर मेरे नाम रजिस्ट्री से भेजा था, जो मुझे सेवाग्राम में 31 जनवरी को मिला।

काशी विश्वविद्यालय वाले आपके भाषण का मुझ पर गहरा असर पड़ा है। खासतौर पर हमारी शिक्षा–संस्थाओं में हिंदुस्तानी को पढ़ाई का माध्यम बनाने की बात उस मौके पर बहुत मौजूं रही। लेकिन क्या सचमुच ही आप यह मानते है कि हिंदुस्तानी नाम की कोई जुबान आज हमारे देश में मौजूद है? दरअसल तो ऐसी कोई जुबान है ही नहीं। मुझे डर है कि काशी में आपने हिंदुस्तानी की उतनी हिमायत नहीं की जितनी हिंदी की और यही हाल सब कांग्रेसियों का है। मुझे ताज्जुब होता है कि आप अपने मन की बात खुले तौर पर क्यों नहीं कहते। कहिए कि आप हिंदी चाहते हैं इस हिंदी को आप हिंदुस्तानी और उससे भी बदत्तर हिंदी–हिंदुस्तानी क्यों कहते हैं? कुछ साल पहले आपने उसे यह नाम देना चाहा था, लेकिन किसी ने इसे अपनाया नहीं। महात्माजी आप कहते हैं कि आपको उर्दू से कोई द्वेष नहीं। मगर आप तो उसे खुल्लमखुलला फारसी लिपि में लिखी जाने वाली मुसलमानों की भाषा कह चुके हैं। आपने यह भी फरमाया है कि अगर मुसलमान चाहें तो भले ही उसकी हिफाजत करें। दूसरी तरफ आप कई बार हिंदी साहित्य सम्मेलन के सभापति रह चुके हैं। क्या कभी आपने उर्दू–प्रचार करने वाली किसी सभा की सदारत की है? अब भी आप इस तरह की सदारत मंजूर करेंगे? और क्या कभी उर्दू की तरक्की के लिए आपने एक पाई का भी चंदा इकट्ठा किया है? मैं तो कांग्रेस वालों के मुह से यह सुनते–सुनते तंग आ गया हूं कि मुस्लिम लेखकों को फारसी शब्दों का और हिंदू लेखकों को संस्कृत शब्दों का इस्तेमाल करने से बचना चाहिए। वे कहते हैं, इस तरह जो जुबान बनेगी वह हिंदुस्तानी होगी। महात्माजी आप खुद एक बहुत अच्छे लेखक हैं। आपको तो पता होना चाहिए कि मंजे हुए लेखक, जिनकी अपनी एक शैली बन चुकी है, कभी फारसी और संस्कृत के उन शब्दों को छो न सकेंगे जो उनकी भाषा के अंग बन चुके हैं। इसलिए आपकी यह सलाह बिलकुल अव्याहारिक है।

हिंदी उर्दू का मेल-

मगर एक रास्ता है। वह यह कि यू.पी. जैसे किसी एक सूबे में हाईस्कूल तक की पढ़ाई के लिए उर्दू और हिंदी दोनों को लाजिमी बना दीजिए। इस तरह जिस सुबे में दोनों जुबाने लाजिमी तौर पर पढ़ाई जाएंगी, वहां गरीब पचास साल के अंदर एक आमफहम भाषा तैयार हो जाएगी। जो हमारी अपनी भाषा है, वह हमारे साथ रहेगी और जिसे हम अपने ऊपर जबरदस्ती लाद रहे हैं, वह हमारे जीवन से हट जाएगी। स्पष्ट ही जब हम दोनों भाषाएं सीखेगें, तो अपने–आप हम उसी में अपने विचार प्रकट करना पसंद करेंगे, जो ज्यादा विकसित, ज्यादा खूबसूरत, ज्यादा लुभावनी, ज्यादा मुख्तसर और ज्यादा अर्थसूचक यानी थोड़ें में बहुत कहनेवाली होगी। इससे न सिर्फ देशी भाषाओं के प्रचार का मार्ग सरल और गुलाम बनेगा बल्कि हिंदु–मुसलमानों के सामाजिक जीवन के बीच पड़ी हुई चौड़ी खाई को पाटने में भी मदद मिलेगी। एक–दूसरे के साहित्य को पढ़कर हम एक–दूसरे के आदर्शों और विचारों को समझ सकेंगे। हो सकता है कि इस तरह हिंदी और उर्दू के मेल से एक नई जुबान सामने आ जाए, और वह हिंदूस्तानी कहलाए। चूंकि यह जुबान दोनों जुबानों की जानकारी का नतीजा होगी, इसलिए वह दोनों कौमों की एक कुदरती जुबान बनी रहेगी। महात्माजी, अगर आप सचमुच अपने इस मुल्क के लिए एक आमफहम कौमी जुबान चाहते हैं, तो मुझे यकीन है कि आप मेरे इस सूझाव को मंजूर कर लेंगे और अपनी सिफारिश के साथ इसे देश के सामने पेश करेंगे। मगर मैं मानता हूं कि आप ऐसा नहीं करेंगे। क्योंकि आप बराबर हिंदी की हिमायत करते आए हैं, और उसी को मुल्क पर लादने की भरसक कोशिश करते रहे हैं और आप यह भी जानते होंगे कि अगर हिंदी व उर्दू दोनों अनिवार्य बना दी गई, तो उर्दू हिंदी को मैदान से खदेड़ देगी। क्योंकि हिंदी के मुकाबले उर्दू ज्यादा सही, ज्यादा मंजी हुई, ज्यादा अर्थसूचक और ज्यादा खूबसूरत है। मगर मेरी यह तजवीज दोनों जबानों को यकसां मौका देती है। अगर आपका ख्याल है कि हिदी मुल्क की अपनी कुदरती भाषा है तो आपको यह विश्वास होना चाहिए कि वह उर्दू को खदेड़ देगी, जैसा कि आपने पिछले साल भी मुझे लिखा था। आपका यह कहना कि दोनों जबानों को लाजिमी बनाने की कोई ताकत आपके हाथ में नहीं है, बेमतलब–सा है। अगर आप इस तजवीज को अपनी सिफारिश के साथ मुल्क के सामने रखना बंद करेंगे, तो जरूर ही उसका असर भी होगा।

उन्होंने खत के नीचे सही तो दी हैं, लेकिन साथ ही उस पर निजी भी लिखा है। इसलिए यहां मैं इनका नाम नहीं दे रहा हूं। नाम का कोई खास महत्व भी नहीं। मैं जानता हूं कि जो ख्याल इन भाई के हैं, वही और भी बहुतेरे मुसलमानों के हैं। मेरे हजार इंकार करने पर भी यह बुराई दूर नहीं हो पाई है। लेकिन जहां तक मुझसे ताल्लुक है, इन भाई को मेरे उस लेख से तसल्ली हो जानी चाहिए, जो इसी विषय पर 23 जनवरी को लिखा गया था और 1फरवरी के 'हरिजन सेवक' में छप चुका है। मैं पत्र–लेखक की इस बात से पूरी तरह सहमत हूं कि जो लाग एक राष्ट्रभाषा के हिमायती हैं, उन्हें उसके हिंदी और उर्दू दोनों रूप सीखने चाहिए। इन्हीं लोगों की कोशिश से हमें वह भाषा मिलेगी जो सबेकी भाषा या लोकभाषा कहलाएगी। भाषा का जो रूप लोगों को, फिर वे हिंदू हों या मुसलमान, ज्यादा जंचेगा और जिसे लोग ज्यादा समझ सकेंगे, बिलाशक वहीं देश की लोकभाषा बनेगी। अगर लोग मेरी इस तजवीज को आमतौर पर अपना लें तो फिर भाषा का सवाल न तो राजनीतिक सवाल रह जाएगा, और न वह किसी झगड़ें की जड़ ही बन सकेगा।

मेरी हिंदुस्तानी हिंदी में से आई है

लोग कहते हैं कि तू तो बहुत दिनों से हिंदी साहित्य सम्मेलन में था। जब वहां था तो हिंदी को बहुत बड़ी बताता था। दक्षिण में पहले हिंदी चलाता था। वहां तो लोग तमिल को मानते थे। वहां तूने हिंदी चला दी। तूने इतना हिंदी का काम किया यह बहुत था, फिर हिंदुस्तानी क्यों? इसका जवाब यह है कि मेरी हिंदुस्तानी हिंदी में से आई है। मैं इंदौर के हिंदी साहित्य सम्मेलन में गया। मारवाड़ी सम्मेलन में भी जमनालालजी के प्रेम से चला गया। वहां जाने की इच्छा नहीं थी, लेकिन प्रेम से जाना ही पड़ता है। प्रेम मुझको घसीट ले गया। वहीं मैंनें कह दिया था कि मेरी हिंदी तो अजीब प्रकार की है। जिसे हिंदू भी बोलते हैं, मुसलमान भी बोलते हैं। उसे उर्दू में लिखो, चाहे देवनागरी में लिखो यही मेरी हिंदी है। मेरी हिंदी वह नहीं है तो साक्षर बोलते हैं। मैं तो टूटी–फूटी हिंदी बोलता हूं। मगर आप समझ लेते हैं। मैंने तुलसीदास पढ़ लिया है, पर मैं हिंदी में साक्षर नहीं बना हूं, क्योंकि मेरे पास उतना वक्त नहीं है। मैंने ऐसी हिंदी चलाई, पर वह नहीं चली तो मैं हिंदी साहित्य सम्मेलन में निकल आया।

गंगा-जमुना का संगम-

संस्कृतमयी बोली तो हिंदी हो सकती है और उर्दू भी आज ऐसी हो गई है, जिसे मौलाना साहब बोल सकते हैं या सप्रू साहब।

इसलिए मैंने कहा कि न मुझे हिंदी चाहिए, न उर्दू। मुझे गंगा–जमुना का संगम चाहिए। पर लोग कहते हैं कि तू तो मूर्ख है। जहां अंजुमन–ए–तरक्की–ए–उर्दू हैं, हिंदी साहित्य सम्मेलन है, जो हिंदी का बड़ा काम करता हैं, वहां तेरी बात नहीं चलेगी। और जब पाकिस्तान बन गया है तो भी तू हिंदुस्तानी की बात करता है? लेकिन मेरा दिल तो बागी हो गया है। यह कहता है कि मैं क्या हिंदुस्तानी को छोडू? वह चीज अच्छी है तो मैं उसे क्यों छोडू दूं? जब हम प्रयाग में जाते हैं और संगम में स्नान करते हैं तो पवित्र हो जाते हैं। इसी तरह अगर हिंदी और उर्दू का संगम बना लूं तो मैं पावन हो जाऊगां। आज तो मुसलमान कहते हैं कि इस्लाम का सबसे बड़ा दुश्मन गांधी है। लेकिन मैं कहता हूं कि अगर मैं जिंदा रहा तो वे लोग मुझे, दुश्मन को भी बुलानेवाले है। मेरी गरज तो सबको है। लेकिन मैं कहूंगा कि हिंदुस्तान में जो पागलपन पूर आया है, उसमें हम डूब न जाएं। बिना मौत के न मर जाएं। अगर मैं अकेला रहूंगा तो भी यही कहूंगा कि मैं तो हिंदुस्तानी को ही राष्ट्रभाषा मानता हूं। जिन्ना साहब हिंदुस्तान में भी है पाकिस्तान में भी है। मुझे कोई नहीं रोक सकता। जिन्ना साहब रोकें। मैं कोई अलग प्रजा थोड़ें ही बन गया हूं। जिन्ना साहब मुझे कैद करें। मैं पासपोर्ट लेनेवाला नहीं हूं। यही हिम्मत आपमें भी होनी चाहिए। हमारी माता–हिन्दमाता ने, जिसका झंडा लेकर हम घूमे हैं, कुर्बानी की है तो क्या हम आज यह मान लें कि अब उस हिन्द माता का सिर कट गया है? कोई ऐसी गलती न करें कि उर्दू को भूलकर हिंदी ही लें। जो चीज एक आदमी करेगा तो उस एक में से अनेक हो सकते हैं। मैं मर जाऊंगा तो भी हटनेवाला नहीं हूं। जैसा मेरा दिल कहता है, वैसे ही आप बनें तो अच्छा है। हिन्दमाता के लिए भी अच्छा है।

जो तुलसी की भाषा है वही हमारी भाषा है-

एक भाई का एक खत आया है, जिसमें यह लिखा है कि जब आपको उर्दू जुबान पर एतराज नहीं है तो अंग्रेजी पर क्यों? जब हिंदुस्तान सारी दुनिया का मित्र है, जैसा कि आप कि आप कह चुके हैं तो फिर जैसे मुसलमान हैं वैसे अंग्रेज हैं। इस भाई को जो दुःख हुआ है वह केवल अज्ञानता का कारण है। इससे ज्यादा अज्ञान का कारण कोई और हो सकता है, मैं तो नहीं समझता। उर्दू पर मुझको एतराज नहीं होता, मैं तो उसका समर्थन कर रहा हूं। प्रांतीय भाषा की हैसियत से तो उर्दू है, पंजाबी है, मराठी है, गुजराती, बंगला और उड़िया वगैरा सब हैं। जितने भाषावतार प्रांत है, उनकी उतनी ही भाषाएँ हैं। यों तो हिंदुस्तान में बहुत अधिक भाषाएं पड़ी हैं, लेकिन सब विद्वानों ने मिलकर जो फैसला किया है, उसके मुताबिक तो 14 या 15 भाषाएं हैं, जो काफी भव्य हैं, जिनके अपने–अपने साहित्य है और जिनसे हम–कुछ–कुछ सीखते ही हैं। लेकिन 15 या 14 भाषाएं सब प्रांतों में तो नहीं चल सकतीं। सब प्रांतों में एक–दूसरे के साथ व्यवहार करने के लिए कौन–सी एक भाषा होनी चाहिए, यह सवाल है। जब से मैं दक्षिण अफ्रीका से वापस आया हूं तभी से मैं बराबर यह कहता आया हूं कि हमारी राष्ट्रभाषा वही हो सकती हैं, जिसे हिंदू और मुसलमान ज्यादा–से–ज्यादा तादाद में बोलते और लिखते हैं। तब तो वह देवनागरी लिपि या उर्दू लिपि में लिखी हुई हिंदुस्तानी ही हो सकती है। मैंने तो कहा है कि मैं उर्दू का समर्थन करता हूं, लेकिन सारी दुनिया का मित्र होते हुए भी मैं अंग्रेजी का समर्थन क्यों नहीं करता, यह समझने लायक बात है।

अँग्रेजी का स्थान नहीं-

अंग्रेजी भाषा का यहां स्थान नहीं हैं। अंग्रेजी ने यहां राज चलाया और पीछे जो राज चलाता है, वह अपनी भाषा भी चलाता है। वह परदेशी भाषा है, स्वदेशी भाषा नहीं है। इसलिए मुझको यह कहते हुए दुःख नहीं बल्कि फख्र होता है कि उर्दू हिंदुस्तानी भाषा है और वह हिंदुस्तान में ही बनी है। तुलसीदास के तो सब भक्त हैं और होना ही चाहिए, लेकिन उनकी रामायण में आपको यह देखकर ताज्जुब होगा कि कितने ही अरबी और फारसी के शब्द के लिए गए हैं। जो शब्द बाजार में लोग बोलते थे, वही उन्होंने ले लिए। आखिर उन्होंने लिखा है, वह आपके लिए और मेरे लिए लिखा है। तुलसीदास जी ने थोड़े–से संस्कृत बोलने वाले हैं, उनके लिए थोड़े ही लिखा है? इसलिए जो तुलसी की भाषा है, वही हमारी भाषा है। अगर आपको फैसला करना है कि कौन–सी हमारी राष्ट्रभाषा है तो मैं यह दावे से कह सकता हूं, पीछे हिंदु मुझको चाहे मारें, काटें या कुछ भी करें, किंतु हमारी राष्ट्रभाषा वही हो सकती है, जो देवनागरी और उर्दू दोनों लिपियों में लिखी जाती है।

लाला लाजपत राय और हिंदी-

लाला लाजपतराय जी तो पंजाब के शेर माने जाते थे। वह तो चले गए। मैं तो उनका मित्र था और उनके साथ मजाक भी करता था कि हिंदी में बोलना कब सीखोगे। वह कहते थे, यह नहीं होने का। याद रखो, वह समाजी थे और यह भी याद रखों कि वह सब होते हुए भी वह थोड़ा–थोड़ा पढ़ तो लेते थे देवनागरी में, लेकिन उनकी मादरी जुबान उर्दू ही थी। वह कहते थे कि उर्दू में तो मुझसे कहो तो घंटों

उनकी संस्कृतमय हिंदी तो उनकी समझ में भी नहीं आती थी। जब मैं चुन–चुनकर अरबी–फारसी के शब्द लाता तब वह मेरी बात समझ सकते थे। जब उनकी बात मैंने कर ली तो सबकी कर ली। तब वह भाई क्यों कहते हैं कि उर्दू पर एतराज क्यों नहीं है? मैं तो कहूंगा कि किसी को भी नहीं होना चाहिए। लेकिन अंग्रेजी के लिए एतराज है। आखिर हिंदी साहित्य सम्मेलन का भी मैं दो दफा सभापति रह चुका हूं और सभापति के पद से मैंने यही चीज कही और किसी ने शिकायत नहीं की। मुझे तो ऐसा लगता है कि जो आदमी उर्दू पर एतराज करता है वही कम हिंदुस्तानी है।

धर्म का संदेश-

हम आज अनेक झंझटों में पड़ें हैं और इस तरह से आपस में विष पैदा हो गया है। अजमेर में भी तो यही हुआ है। अगर आप हिंदू–धर्म की रक्षा करना चाहते हैं तो यहां जितने मुसलमान पड़े हैं, उनकी दुश्मनी करके नहीं कर सकते। मैं तो आजकल का ही मेहमान हूं। कुछ दिनों में यहां से चला जाऊंगा। पीछे आप याद किया करेंगे कि बूढ़ा जो कहता था, वह सही बात है। मैं कोई अकेले हिंदू–धर्म की ही बात कर नहीं सकता। इस्लाम–धर्म भी मर जाएगा अगर उन्होंने कहा कि हम तो सिर्फ मुसलमानों को ही पहचानते हैं, बाकी तो हमारे दुश्मन हैं। इस तरह तो वे इस्लाम को दफना देंगे, इस बारे में मुझे कोई शक नहीं है। ईसाई–धर्म के लिए भी मैं यही कहूंगा। अगर वे कहें कि जो ईसा की नहीं मानते वे सब दुश्मन हैं और अहले–किताब नहीं हैं तो मैं कहूंगा कि वे गलती करते हैं। दुनिया के जितने धर्म हैं, उनके माननेवाले सब अहले–किताब हैं। अगर वे कहें कि जो बाईबिल को माने वह अहले–किताब हैं या जो कुरान शरीफ को मानते हैं, वही अहले–किताब हैं तो मैं कहूगां कि वे गलत रास्ते पर हैं। दुनिया के जितने धर्म हैं वे सब अच्छे हैं, क्योंकि वे भलाई सिखाते हैं। जो दुश्मनी सिखाते हैं, उनको मैं धर्म नहीं मानता। अंग्रेजों के जमाने में भी वही बात मैं कहता था कि यहां अंग्रेजी हो नहीं सकती। मेरे दिल में अंग्रेजी की कद्र हैं और मैं अंग्रेजी पढ़–लिख भी लेता हूं। सब मानते भी हैं कि मैं न अंग्रेजों का दुश्मन हूं, न उनकी भाषा का। लेकिन सब चीजें अपनी–अपनी जगह पर हैं। अंग्रेजी दुनिया की भाषा है। अगर दुनिया के साथ व्यवहार करना है तो अंग्रेजी से ही हो सकता है। अंग्रेजी बहुत व्यापक बन गई है, लेकिन हिंदुस्तानी व्यापक नहीं है। हम अंग्रेजी से तो बरी हो गए, लेकिन अंग्रेजी भाषा और अंग्रेजी सभ्यता का जो प्रभाव हम पर पड़ा है, उस असर से हम अभी नहीं निकले हैं। यह कितने दुःख की बात है। याद रखो, मैंने कहा है कि हिंदुस्तानी वह चीज है जो उर्दू और हिंदी के संगम से बनी है, जैसा गंगा और जमुना का संगम प्रयाग में होता है। उस संगम में तो सरस्वती भी बताई जाती है, लेकिन उसको न देखते हैं, न जानते हैं। दोनों का व्याकरण तो एक होना ही चाहिए और वह हिंदुस्तानी है। उसमें संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी वगैरह सब भाषाओं के शब्द भरे पड़े हैं। अंग्रेजी का शब्द जैसे कोर्ट है, तो उसको कोर्ट ही कहेंगे। अगर कचहरी कहो तो वह भी बाहर का ही शब्द है, हमारा तो नहीं है। इसी तरह साइकल है और रेल है। रेल को और क्या कहेंगे।

अंग्रेजी खत फेंक दूँगा-

अंग्रेजी शब्द हमारी भाषा में काफी दाखिल हो गए हैं और उनसे हमें घृणा नहीं हैं, लेकिन अगर ये भाई मुझको अंग्रेजी में खत लिखें तो मैं फेंक दूंगा, क्योंकि मैं जानता हूं कि वे हिंदुस्तानी लिख सकते हैं। इसी तरह से अगर मेरा लड़का अंग्रेजी में लिखे, क्योंकि अंग्रेजी तो वह जानता है तो मैं फेंक दूंगा और नहीं पढूगां। इसी तरह से अगर मैं अंग्रेजी में कुछ लिखकर भेंजू तो उसे फेंकने का अधिकार है। यह तो बिल्कुल ही सरल चीज हैं, लेकिन हम तो आज अपना धर्म–कर्म सब भूल गए और हमारे अंदर एक प्रकार की विकृति पैदा हो गई है। ईश्वर उस बला से हमें बचा लें।

नागरी और उर्दू लिपि के बीच अंत में जीत नागरी की होगी-

उर्दू 'हरिजन' के बारे में आपका लेख देखा। यदि वह आपका लिखा न होता तो मैं यही समझता कि किसी ने बहुत ही क्रोध में लिखा है। जीवणजी भाई ने जो कुछ लिखा है, उससे सिर्फ यही साबित होता है कि लोगों को उर्दू लिपि में 'हरिजन' की जरूरत नहीं । पर आप उसके कारण नागरी 'हरिजन सेवक' को क्यों बंद करें? क्या आप समझते हैं कि पहले हिंदी 'नव जीवन' निकालत थे (उर्दू नहीं) तब कोई गुनाह करते थे? उसके बाद भी नागरी 'हरिजन सेवक' निकलता रहा, पर आपने उर्दू हरिजन उसे समय नहीं निकाला। अगर आपने उर्दू और नागरी हरिजन केवल हिंदुस्तानी का प्रचार करने के लिए निकाले होते तो बात ठीक थी। पर नागरी हरिजन सेवक पहले से ही निकल रहा है। उसमें घाटा हो तो आप भले ही बंद करें। आपने जो चेतावनी नागरी हरिजन सेवक बंद करने की दी, उसमें मुझे एक प्रकार का बलात्कार लगता है। क्या अंग्रेजी 'हरिजन' बंद हो जाना चाहिए। पर होता यह है कि अंग्रेंजी हरिजन को जितना महत्व मिलता है,

उतना दूसरे संस्करणों को नहीं। यह कितने दुःख की बात है कि आप अपने प्रार्थना–प्रवयन हिंदुस्तानी में देते हैं। उनका सारांश आपके दफ्तर में अंग्रेजी में होता रहा है। और फिर उसका उल्टा नागरी और उर्दू 'हरिजन' में छपता था, यह कहकर कि अंग्रेजी से। अब तो यह नहीं लिखा रहता। शायद अब सीधा हिंदुस्तानी में ही लिखा जाता हो। आपने कई वर्ष पहले लिखा था कि जहां तक सम्भव होगा, आप केवल गुजराती में या हिंदुस्तानी में लिखेंगे और उसका उल्टा अंग्रेजी में जाएगा। पहले ऐसा चला भी, लेकिन बाद में यह सिलसिला शिथिल हो गया। मैं फिर आपसे अनुरोध करता हूं कि आप अंग्रेजी 'हरिजन' बन्द कर दें और दूसरे संस्करण जारी रखें।

जो बात वाकई सही है, वह अगर कहीं जाए तो उसे क्रोध मानना शब्द का सही प्रयोग नहीं होगा। क्रोध में आदमी बेतुका काम कर लेता है। अगर उर्दू 'हरिजन' बन्द करना पड़ा तो साथ–साथ नागरी भी बंद करना लाजिमी यानी आवश्यक हो जाता है। लाजिमी बात करने में क्रोध कैसा? जिसे मैं लाजिमी समझूँ, उसे दूसरे न भी समझें, जैसे कि इस पत्र के लेखक, उससे मुझे क्या? हमें जिसे लाजिमी मानें वही सारा जगत माने ऐसा हो तो अच्छा है। लेकिन ऐसा होता नहीं है। हर चीज के कम–से–कम दो पहलु होते ही हैं। अब यह बताने का रहा कि एक को छोडूं या दोनों को। यह ठीक है कि जब मैंने नागरी में 'नवजीवन' निकाला और 'हरिजन' निकालना शुरू किया, तब दोनों लिपि की चर्चा नहीं थी। अगर थी तो मुझे उसका पता नहीं था। बीच में स्व. भाई जमनालालजी की इच्छा से हिंदुस्तानी प्रचार–सभा कायम हुई। इससे उर्दू रिसाला निकालना लाजिमी हो गया। अब माना कि उर्दू रिसाला बंद हो और नागरी निकलता रहे तो यह मेरी निगाह में बड़ा ही अनुचित होगा। क्योंकि हिंदुस्तानी प्रचार–सभा के हिंदुस्तानी के माने यह हैं कि वह वह जैसे नागरी लिपि में लिखी जाती है, वैसे ही उर्दू लिपि में भी लिखी जा सकती है। इसलिए जो अखबार दोनों लिपियों में निकलता था, उसे ऐसे ही निकलना चाहिए। वह भी एक ऐसे मौके पर जब कि हिंदी के लोग चारों ओर से कह रहे हैं कि राष्ट्रभाषा हिंदी ही है और वह नागरी लिपि में ही लिखी जाए। यह विचार ठीक नहीं है, यह बताना मेरा काम हो जाता है। यह दलील अगर ठीक है, तो मेरा कर्तव्य हो जाता है कि मैं नागरी, लिपि के साथ उर्दू लिपि को रखूं, और न रख सकूं तो मुझे उर्दू 'हरिजन सेवक' के साथ नागरी 'हरिजन सेवक' को भी त्याग करना चाहिए।

नागरी आला दरजे की लिपि-

लिपियों में सबसे आला दरजे की लिपि नागरी को ही मानता हूं। यह कोई छिपी बात नहीं है। यहां तक कि मैंने दक्षिण अफ्रीका से गुजराती लिपि के बदले में नागरी लिपि में गुजराती खत लिखना शुरू किया था। इसे मैं समय न मिलने के कारण आज तक पूरा न कर सका। नागरी लिपि में भी सुधार के लिए गुंजाइस है, जैसे आज कि करीब–करीब सब लिपियों में है। लेकिन यह दूसरा विषय हो जाता है। यह इशारा जो मैंने किया है, सो यह बताने के लिए कि नागरी लिपि का विरोध मेरे मन में जरा भी नहीं है। लेकिन जब नागरी के पक्षपाती उर्दू लिपि का विरोध करते हैं, तब उसमें मुझे द्वेष की और असहिष्णुता यानी तअस्सुब की बू आती है। विरोधियों में इतना भी आत्म–विश्वास नहीं हैं कि नागरी लिपि यदि संपूर्ण है–दूसरी लिपियों के मुकाबले में पूर्ण है, तो उसी का साम्राज्य अंत में होगा। इस निगाह से देखा जाए तो मेरा फैसला निर्दोष लगना चाहिए और जरूरी भी। हिंदुस्तानी के बारे में मेरा पक्षपात है सही। मैं मानता हूं कि नागरी और उर्दू लिपि के बीच अंत में जीत नागरी लिपि की होगी। इसी तरह लिपि का खयाल छोड़कर भाषा का ही ख्याल करें तो जीत हिंदुस्तानी में फारसी लफ्ज बुत कम आते हैं तो भी मेरी मुसलमान दोस्तों और पंजाबी और उत्तर के हिंदुओं ने मुझे सुनाया है कि मेरी हिंदुस्तानी समझने में उन्हें दिक्कत नहीं होती। हिंदी के पक्ष में मैं तो बहुत कम दलील पाता हूं। खूबी यह है कि पहले–पहल जब हिंदी साहित्य सम्मेलन में मैंने हिंदी की व्याख्या की, तब उसका विरोध नहीं के बराबर था। विरोध कैसे शुरू हुआ, उसका इतिहास बड़ा करूणाजनक है। मैं उसे याद भी नहीं रखना चाहता। मैंने यहां तक बताया था कि 'हिंदी साहित्य सम्मेलन' नाम ही राष्ट्रभाषा के प्रचार के लिए सूचक नहीं था, न आज भी है। लेकिन मैं साहित्य के प्रचार की दृष्टि से सदर नहीं बना था। स्व. भाई जमनालालजी और दूसरे अनके मित्रों ने मुझे बताया था कि नाम जो कुछ भी हो, उन लोगों का मन साहित्य में नहीं था, दिल राष्ट्रभाषा में ही था और इसलिए मैंने दक्षिण में राष्ट्रभाषा का प्रचार बड़े जोरों से किया। उपवास के छठे दिन प्रातःकाल में प्रार्थना के बाद लेटे–लेटे मैं यह लिख रहा हूं। कितने ही दुःखदायी स्मरण ताजा होते हैं, पर उन्हें और बढ़ाना मुझे अच्छा नहीं लगता।

एक सच्चे कलाकार के लिए सिर्फ वही चेहरा सुंदर होता है,
जो बाहरी दिखावे से परे, आत्मा की सुंदरता से चमकता है।
महात्मा गाँधी

हिंदी प्रचार सभा की रजत जयंती के उत्सव में बापू। मद्रास, जनवरी 25, 1946

हार्दिक शुभकामनाओं सहित

हिन्दुस्तान स्टीलवर्क्स कन्स्ट्रक्शन लिमिटेड **Hindustan Steelworks Construction Limited**

(भारत सरकार का एक उद्यम) एनबीसीसी (इंडिया) लिमिटेड की एक सहायक कम्पनी, निर्माण भवन, भिलाई–490001, जिला–दुर्ग (छ.ग.)
वेब साईट web site : www.hscl.co.in ई–मेल E-mail : hsclbhilai.unitsectt@hscl.co.in सिन CIN : U27310WB 1964 GOI 026118

AN ISO 9001-2008 COMPANY

Creating Infrastructure with a difference

हिन्दुस्तान स्टीलवर्क्स कन्स्ट्रक्शन लिमिटेड

(भारत सरकार का उद्यम) एनबीसीसी (इंडिया) लिमिटेड की एक सहायक कम्पनी,निर्माण भवन, भिलाई–490001, जिला–दुर्ग (छत्तीसगढ़)

HINDUSTAN STEELWORKS CONSTRUCTION LIMITED

(A Government of India Undertaking), A subsidiary of NBCC (India) LimitedNirman Bhavan, Bhilai- 490001, Distt- Durg(C.G.) दूरभाष Phone 2223878,2276625, 2355242

वेब साईट web site : www.hscl.org ई–मेल E-mail: hscl_bhilai18@gmail.com

पंजीकृत कार्यालय – पी 34/ए, गरियाहाट रोड (दक्षिण), कोलकता (पं. बंगाल) 700031
Registered ofice : P-34/A, Gariahat Road (South) Kolkata (W.B.) 700031

हमारी विशेषज्ञता

इस्पात संयंत्रो का निर्माण एवं रखरखाव, औद्योगिक संयंत्रो, भव्य इमारतों, अस्पतालों एवं विश्वविद्यालयों का निर्माण, पूर्वोत्तर इलाकों का निर्माण, राजमार्गो एवं पुलों का निर्माण, देश की हर तरह की अधोसंरचनों का निर्माण, प्रधान मंत्री ग्राम सडक योजनांतर्गत सडकों का निर्माण, इत्यादी ।

''हिंदी'' हमारा गौरव है. आइए, हम सब मिलकर सभी कार्य हिंदी में करें.

स्वच्छ भारत स्वस्थ भारत

FSNL
फेरो स्क्रैप निगम लिमिटेड भारत सरकार के इस्पात मंत्रालय के अधीन, आई एम एस प्रमाणित मिनी रत्न–II कंपनी है। विगत वर्षों में एफ.एस.एन.एल. अंतर्राष्ट्रीय स्तर की प्रौद्योगिकी के साथ एक अग्रणी संगठन के रूप में स्टील मिल एवं अन्य क्षेत्रों में विकसित हुआ है।
प्रमुख गतिविधियाँ
सेल/आरआईएनएल एवं अन्य इस्पात संयंत्रों में एफ.एस.एन.एल. द्वारा दी जा रही विभिन्न सेवाएं :
▪ स्लैग से लौह एवं इस्पात स्क्रैप की रिकवरी एवं प्रोसेसिंग
▪ प्रकृमित स्क्रैप में लौह संवर्धन 45% से 85% (वैल्यू एडिशन)
▪ ब्लास्ट फर्नेस (बी एफ) एवं स्टील मेल्टिंग शॉप (एसएमएस) में गर्म स्लैग पिट प्रबंधन
▪ लैन्सिंग एवं /अथवा बालिंग के जरिए लौह एवं इस्पात स्कल तथा जैम की हैण्डिलंग एवं प्रोसेसिंग
▪ अनुरक्षण/मिल अपशिष्टों का संग्रहण एवं प्रोसेसिंग
▪ दोषपूर्ण स्लैबों की स्कार्फिंग
▪ एल.डी. स्लैग का इस्पात संयंत्र में अनुवर्ती उपयोग हेतु क्रशिंग एवं स्क्रीनिंग
▪ एसिड न्यूट्रलाइलेशन
हमारे ग्राहक
सेल SAIL
NINL
www.ninl.in
ESSAR
हम उपलब्ध हैं:
0788-2222474
0788-2220423
fsnl.co@gov.in
www.fsnl.nic.in
फेरो स्क्रैप निगम लिमिटेड
40 वर्षों से, आगे बढ़ता हुआ

सेल SAIL
सेल रिफ्रैक्ट्री यूनिट, भिलाई
इस्पात हेतु रिफ्रैक्ट्री...
हमारे उत्पाद
Magnesite Bricks
Mag - Chrome Bricks
Magnesia Carbon Tape Hole Sleeve
DRY Ramming Mass
Silica Bricks
Magnesia Carbon Bricks
L.D. Gunning Mass

नराकास की 49वीं बैठक में गृह पत्रिका ''महानदी'' का विमोचन
आदरणीय श्री अनिर्बान दास गुप्ता, मुख्य कार्यपालक अधिकारी, बी.एस.पी. एवं
श्री के.के. सिंह, कार्यपालक निदेशक (कार्मिक एवं प्रशासन) के करकमलों द्वारा

आदरणीय मुख्यअतिथि श्री हरिश सिंह चौहान, सहायक निर्देशक (कार्यान्वयन)
एवं कार्यालयाध्यक्ष भारत सरकार गृह मंत्रालय, राजभाषा विभाग का सम्मान करते हुए
आदरणीय श्री अनिर्बान दास गुप्ता, मुख्य कार्यपालक अधिकारी, बी.एस.पी.

बैंक ऑफ़ बड़ौदा

बैंक ऑफ़ बड़ौदा
Bank of Baroda
विजया VIJAYA | देना DENA

प्रस्तुत करता है

HAPPY LIFE FESTIVAL

इस फेस्टिव सीजन मनाएं, ड्रीम होम एवं ड्रीम कार वाला फेस्टिवल.

बड़ौदा कार लोन

- आकर्षक ब्याज दर
- ज्यादा ऋण राशि
- लंबी अवधि

बड़ौदा होम लोन

- आकर्षक ब्याज दर
- सरल दस्तावेजीकरण
- माजूदा होम लोन का आसान टेकओवर

मिस्ड कॉल दीजिए* : होम लोन – 846 700 1111

मिस्ड कॉल दीजिए* : कार लोन – 846 700 1133

www.bankofbaroda.in | हमें फ़ॉलो करें यहां: